इस वर्षके प्रारम्भिक उपहारकी ५ पुस्तकें

जो लोग गत वर्षों में इस पत्रिका के उपहारकी पुस्तकें पाचुके थे वे स्वयं ही जानते हैं, परन्तु नये ग्राहकहोनेवालों को जानना चाहिये, कि—हिन्दी, पत्रोंमें इस पत्रिकाके समान किसी बडे, प का भी उपहार नहीं होता, इस वारका उपहार भी वैसाही विराट १४ वें वर्षका मंगल मइय देनेवाले नये पुराने सब ग्राहकोंको नीचे लिखे पांच पुस्तक दिये जाते हैं।

१ **सांख्यदर्शन**-(सांख्यसूत्र) अन्वय, पदार्थ और विस्तार के साथ सरल भाषाटीका सहित सांख्य कारिका (अध्यात्मविद्याका उत्तम ग्रन्थ)

२ **व्याख्यानसुधा**-अर्थात् पतिव्रताधर्म आध्यात्मिक उन्नति गोरक्षा और वैश्यधर्म विषय पर व्याख्यान वाचस्पति प० दीनदयालुजी के चार व्याख्यान।

३ **प्रह्लादनाटक**-थियेटरी ढंगपर भगवान्के भक्त प्रह्लाद जीका चरित्र।

४ **प्रबोधकौमुदी**-मनुष्यशरीरके अंगों का कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य क्या है इस विषयपर स्वा॥ कृष्णानन्दजीका रोचक व्याख्यान।

५ **व्याख्यानामृत**-इस-पुस्तकमें क्या किया, मेरा, सनिक सुख रहा, और तुम कौन हो, इन चार विषयों पर इन्ही स्वामी कृष्णानन्दजीका परमरोचक उपदेश। यही ५ पुस्तक बहुमूल्य होनेपरभी केवल अल्पनामी खर्च के दोआने में ही पताका का वार्षिक मूल्य एक रुपया और डाक महसूल का २ आना कुल १।) के वी० पी०में भेजते हैं।

उपहारकी छठी पुस्तक मूल और भाषाटीका सहित

सम्पूर्ण वाल्मीकीय रामायण

शीघ्र ही छपकर तैयार होगी तब सुलभ मूल्यमें भेजी जायगी।

सामवेद संहिताका उपहार

मूल मंत्र, अन्वय और पदार्थ और भाषा भावार्थ सहित सामवेद नये ग्राहकों को आधे मूल्यअर्थात् १॥) रुपये में देंगे।

सनातनधर्मपताका—११वें वर्ष की बारहों संख्या अनेकों धर्म-लेखोंसे भरी है कीमत १ रुपया डाकव्यय ३ आना।

निवेदक—सम्पादक सनातनधर्म पताका.

विनय यह है कि सचमुच मैं मलिन हूं मन-वचन क्रमशः
अभयवर भक्तिदायक हो कि करुणानिधि विरुदधारी ॥
चराचर में तुम्हारी व्याप्ति है भगवान्-भव-भयहर।
अकथ अनुपम अगोचर हो कहें यों शास्त्र श्रुतिसारी ॥
तुम्हीं तुम हो तुम्हीं तुममें कहूँ क्या मैं कि क्या तुम हो।
तुम्हीं हो ब्रह्म माया औ तुम्हीं संसार संसारी ॥
अनन्ताश्रय तुम्हारा सर्वथा बलभद्र को बल है।
जिसे कवि सिंह कहते हैं उसे दो भक्ति सुखकारी ॥

—०—

कहें कैसे ये लीला तेरी अपरम्पार कैसी है।
कि भक्तों के बचाने को सदा तयार कैसी है ॥
तुम्हारी प्रेमकी चितवनमें चित जिसका रमें निशदिन
समझना है वही सचमुच निगाहे यार कैसी है ॥
नहीं चितवन में समझे तो भला चितवनमें क्या समझे।
समझके भी न समझे ये काशिश बेकार कैसी है ॥
लहर उठती बहरमें है कहर पानी बरसता है।
पुरानी नाव है ईश्वर यही मझधार कैसी है ॥
सुनो बलभद्रके भैया कि नैया के खिवैया हो।
बचाने को तेरी दरबार पै पतवार कैसी है ॥
यही बलभद्र है बया जिसको औ कवि सिंह कहते हैं।
कि जिसकी शान भी हर आन तावेदार कैसी है ॥

—०—

गुजल भाव।

अब क्या कहूँ यारो जो नक़्शा बदल गया है ॥
जिगरों का धाढ़ करना दिलसे निकल गया है ॥
पाषाणों पार हीरा मर्दन और आब में है।
जिगरों का नाम करने की दिलमें ले जलगया है ॥
कहिये है प्यार उनको पहुँचना कैसे पानी।

कहीं आसमान में भी पितरों को जल गया है ॥
ऐ मित्रवर्ग सोचो दिल में ज़रा हक़ीक़त ।
बैठा है कौन अन्दर जो तार चल गया है ॥
फोनूं को कौन अंदर बैठा बजा रहा है ।
जिसमें तमाम आला अन्दाज़ ढलगया है ॥
क़ुदरत की सूर्य्य किरणें और मंत्र कौन कम हैं ।
जो पितृऋण तुमारे इस सर से टल गया है ॥
वाणी का बाण कैसे हिरदे के पार होता ।
क्या आपके कलेजे छाती में रल गया है ॥
कहिके फ़िज़ूलखर्ची जड़ धर्म काटते हो ।
जीतेही जी पिता का कुल यश निकल गया है ॥
ऐ मन्नूलाल जिनको पितुका पता न होवे ।
उनके लिये तो पहिले शजरा ही गल गया है ॥

— मन्नूलाल गोस्वामी फर्रुखाबाद

—०—

गज़ल कलियुग ।

हुवा जयराज कलियुग का, दया दिलमेंसे बिसराई ।
तजा निज धर्म को सबने, करें सब लोग मनचाही ॥१॥
बिना अपराध से तिरिया, तजी है पुरुष ने अपनी ।
डरें ना पाप से कोई, पराई नार मन भाई ॥ हुवा० २
तजा तिरिया ने पति अपना, तकें परपुरुष को दिलमें ।
डुबावें कुल ससुर पितु का, मरें यमलोक को धाई ।हुवा० ३
पिता माता को तज करके, होवें वश सुत तिरिया के ।
तजी सतसङ्गती दिलसे, रटें गनिका के घर जाई ।हुवा० ॥
सनातन धर्म तज दीना, हुए मन बहुत दुनियां में ।
करें अपनी ही मनमानी, कोई नहीं मानने भाई।हुवा०५
महानन्द सोचले दिलमें, भई बेपीर है दुनियां ।
शिवपरशु राम को रटना, न बेटा बापना माई।हुवा० ६

प्रार्थना

यत्कृतं यत्करिष्यामि तत्सर्वं न मया कृतम्।
त्वया कृतन्तु फलभुक् त्वमेव मधुसूदन॥

अन्वय और पदार्थ

(मधुसूदन) हे मधुसूदन (यत्) जो (कृतम्) किया है, (यत्) जो (करिष्यामि) करूँगा (तत्) सो (सर्वम्) सब (मया) मैंने (न) नहीं (कृतम्) किया है (तु) किन्तु (त्वया) तुमने (कृतम्) किया है (त्वम्-एव) तुम ही (फलभुक्) फल भोगने वाले हो ॥

(भावार्थ)—हे मधुसूदन ! मुझे सदा इस भावसे रक्खो, कि—जो कुछ किया है, जो कुछ करता हूँ और जो कुछ करूँगा वह सब तुम्हारा ही किया हुआ है अर्थात् तुम ही मुझसे कराते हो और तुम ही उसका फल भोगनेवाले हो, मैं तो आपका दास हूँ और आप जो कुछ आज्ञा देते हैं वही करता हूँ।

हे मङ्गलमय ! आपकी ही मङ्गलमयी इच्छासे विश्वके सकल काम यथावत् होते रहते हैं। जो तुम्हारी भक्तिसे अपने हृदयको निर्मल करके तुम्हारी मङ्गलमयी इच्छाके साथ अपनी इच्छाको मिलासकता है वह पुरुष ही धन्य है और वह ही आपका, इस विश्वविमोहना, मोहजननी अघटनघटनापटीयसीमायाके हाथसे छुटकारा पाकर परमानंददायी भक्तिरूप धनसे धनी होसकता है, जो किसी कर्त्तव्यमें अहङ्कार नहीं रखता जो सब ही पदार्थों में सर्वदाके लिये, तुम्हारे त्रिभुवनविजयी, श्यामसुन्दर, नवकिशोर, नटवर, मदनमोहन रूपका दर्शन करता है; आप उसकी निजी सम्पत्ति होजाते हैं और वह ही यथार्थ में निष्कपटभाव से कहसकता है, कि—

त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
[illegible]

[illegible]

[illegible] [illegible] आपको ही अपना धन मानकर अपने चित्तमें लगी हुई अग्निको शान्त करसकूँ।

हे सर्वान्तर्यामी आप तो घटके भीतरकी सब ही कथा और व्यथाओंको जानते हैं ऐसी कौनसी बात है जो आप से छुपी हो? जब कि आपने दया करके, मेरे दुःखित प्राणों के ऊपर कृपादृष्टि करके यह

आशा दी है, कि—तेरे प्रेमपूर्ण अनुरागको मैं अपने प्रेममें मिला लूंगा, एक बार विचार करके देखो, कि—आपके प्रेमको भूलकर अनित्य संसारके स्त्री पुत्र आदि परिवारके साथ झूठे आनन्द में मतवाले होकर मेरे प्राण कैसे कातर होरहे हैं, हृदय कितना मैला होगया है, कैसा मूर्ख आगया है। मैं समझता हूँ मैं करता हूँ, ऐसे झूठे अभिमानमें बेहोश होकर आपको भूलेहुए कितना समय बीतगया, जिसका कुछ पता ही नहीं है! हे नाथ! और कबतक परीक्षा करोगे? अब आपने अमोघ आशा दी है तो शक्ति भी दीजिये, जिससे कि—अब आपको आपको न भूलूँ जिससे कि—हरएक काममें आपकी महिमाको मान कर अपने आपेको भूलताहुआ आपके प्रेममें मस्त रहसकूँ। जो कुछ हो जो कुछ कराओ और जो कुछ दिखलाओ, यह सब मानो आप की मङ्गलमयी आज्ञा है, ऐसा विचार कर उसको शिर झुकाकर ग्रहण करसकूँ, जगत्‌के भले बुरे किसी कामका भी मेरे मनमें अभिमान न आवे हृदयमें अभिमान रूप खोटे संस्कारका दाग ही लगने न पावे आपके प्रेममें अपने आपेको भूलकर तुम्हारा ही होजाऊं, हे दयामय! दीन हीनकी आशाको पूरी करके अपने दीनबन्धु नामको यथार्थमें सार्थक करो, त्रिलोकीभरमें मुझसा दीन और कोई नहीं मिलेगा, इस बार इस दीनके ऊपर ही दया करके आपको अपनी दीनबन्धुता दिखानी होगी।

—०—

भगवान्‌की झाँकी

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥

सकल शास्त्रोंकी सारभूत गीतामें यह बात आपने अपने मुखसे ही कही है, कि—"यो मां पश्यति सर्वत्र,, बात तो बड़ीमीठी है, इसको पढ़ते ही वा सुनते ही मानो आपको देखनेकी इच्छा भीतर जाग उठती है, मनमें हो तब ही तो आपको देखा जासके, न जाने एक बार भी क्यों नहीं दीखता, कि—तुम कैसे हो! अच्छी तरहसे चारों ओर बार २ कर चारोंओरको निहारता हूँ। ऊपरको देखता हूँ तो नीला २ आकाश फैलाहुआ है, उसमें चन्द्रमा, सूर्य, तारे और नक्षत्रोंके भेद हैं नीचेको देखताहूँ तो विशाल भूमण्डल है, उसमें न जाने कितने जीव, वृक्ष लता, नदी और पर्वत हैं, परन्तु तुम तो कहीं भी नहीं दीखते

अपने शरीरकी ओरको देखताहूँ तो दश इन्द्रियोंवाला पञ्चभूतका
पुतला ही नजर आता है, भीतरको प्रवेश करता हूँ तो रागद्वेष, सङ्क
विकल्प, संशय, निश्चय और अहङ्कारकी झाँकी दीखती है, मनटक
जाकर लौट आताहै, कहीं आपका पता तो मिलता नहीं, तो क्या आप
दर्शन मिल ही नहीं सकता? नहीं नहीं यदि तुम्हारा दर्शन नहीं है
तो कोई तुम्हारी बात भी नहीं करता। फिर विचारने लगता हूँ,
क्या कभी किसीने तुम्हे देखा है? उत्तर मिलता है, कि देखा क्यों न
है? जिस अवतारमें गीताका उपदेश दिया गया है, उस समय म
ही तो आपको देखा है, पाण्डवोंने देखा कौरवोंने देखा यादवोंने दे
द्रौपदीनेदेखा रुक्मिणी सत्यभामा आदि यदुकुलकी कामिनियोंने दे
ब्रजकी ग्वालिनी और ग्वालबालोंने देखा यमुनाने देखा, वंशीवटने दे
नन्दयशोदाने देखा, वसुदेव देवकीने देखा और कंस शिशुपाल, जरास
आदिने भी देखा था, सबोंने ही उस एक मूर्त्तिको देखाथा, परन्तु
भी यशोदाके 'तुम, और अर्जुनके 'तुम, इन दोनोंमे बड़ाभारी भे
है। सबोंने ही अपने२ भावसे देखा, इसकारण एक मूर्त्ति होने पर
रूप भिन्न२ हैं। मैं जो आपकी झाँकी करना चाहता हूँ सो कौनस
मूर्त्ति में दर्शन करूं, किस रूपमें आपको देखूं? अपने नेत्रोंसे तो आ
को देख नहीं सका, कदाचित् दूसरेकी दृष्टि से आपको देखस
एकबार इसकी भी चेष्टा करनी चाहिये, किसकी समान चेष्टा कर
देखूं ? तुम्हारी जौनसी भी मूर्त्तिका ध्यान करता हूँ, वही सुन्दर औ
मधुर मालूम होती है। केवल द्वापरयुगमें इस कृष्णमूर्त्तिमें ही तुम
कितने रूपोंसे कितने लोगोंके हृदयोंमें प्रकाश डाला है इसकी गिन
ही नहीं होसकती, जिस समय तुम माता देवकी की गोदमें अवतो
हुए थे, उस समय तुम्हारे रूपसे चारों दिशायें प्रकाशित हो उठ
थीं, उस प्रकाशमें वसुदेव और देवकीने एक अपूर्व मूर्त्तिका दर्शन किया
उन्होंने पहिले देखा, कि केवल प्रकाश या ज्योतिमात्र है, फिर जब उ
ज्योतिके भीतर दृष्टि स्थिर हुई तब देखा, कि एक अति सुन्दर नी
कान्तिमय कृष्णमूर्त्ति, मस्तक पर अनेकों रत्नोंसे जड़े सुनहरी मुकु
और चारों भुजाओंमें शंख, चक्र, गदा पद्म धारण किये, पीला रेशम
वस्त्र पहिरे, हृदयमें भृगुके चरणके चिह्न और उसके ऊपर लाल य
की दमकती हुई कौस्तुभमणिको धारे तथा सकल अङ्गोंमें अनेकों आभू
षणों से सुशोभित है, धीरे२ यह मूर्त्ति अन्तर्धान होगई और देखने
लगा कि—गोदीमें एक अपूर्व बालक-उस ज्योतिर्मण्डलके मध्यमें
राजमान मूर्त्तिके समानही द्विभुजधारी बालकमूर्त्ति विराजरहीहै।

चतुर्भुजी मूर्त्तिको देख कर जितने मोहित हुए थे, इस बालकमूर्त्ति को देख कर उससे भी अधिक मोहित होगए, उसको देखते ही ऐसे आनन्दमें मग्न होगए कि मानो कोई खोई हुई वस्तु फिर मिलगई, दोनोंने अनेकों बार मुख चूमा, देवकीने बार बार छातीसे चिपटाकर दूध पिलाया, दोनों बार२ परस्पर गोदमें लेने देनेलगे । कुछ समयके लिये मानो संसार भरको भूल गए, शोक और दुःख का ध्यान ही नहीं रहा, कंसके अत्याचारों की याद भी नहीं आई, मानो उनका सब संसार उस बालकमें ही समागया। वसुदेव और देवकी अपने जीवनमें कभी उस रूपको भूल ही नहीं सके, भला उस रूपको एक बार देख कर कैसे भुलाजासकता है ? भूलना तो दूर रहा, वह रूप कभी नेत्रोंके सामनेसे हट ही नहीं सकता, जिधरको ताको जिस वस्तुको देखो तहां मानो उस ही रूपकी झांकी का प्रकाश है अपने आप ही "यो मां पश्यति सर्वत्र" सर्वत्र उसही मूर्त्ति का दर्शन होने लगा । इस अवतारमें ही आपने समय २ पर न जाने कितने रूपोंसे कितने लोगोंके मनको हर लिया था । मैं आपके कुछ और रूपों की बात भी कहता हूँ । एक समय नींद उचटने पर नेत्रोंका काजल और माथेका तिलक गालोंमें मलकर हँसतेर कभी बैठकर और का हुनका मारकर पूतना के स्तनको पिया और उसको मुक्ति दी थी, एक दिन नंगे शरीर धूलमें खेलते २ नन्दजीके छोटे २ ही बछड़ों को खोलकर नन्दजीके पास लेगए थे,इसके कुछ ही दिन बाद माता यशोदाने तुम्हे ताड़ने के लिये बांधाथा,उससमय तुमने धूलमिले दूधदही को मुखसे मल शान्त बालककी समान खड़े होकर मानो भयभीत हो इसप्रकार माताके मुखकी ओरको देखाथा,यशोदा के हाथसे गूंथी हुई चोटी को बांधेहुए तुमने धौली,श्यामा आदि सकल गौओंको लेकर ग्वालबालों के साथ वृन्दावनमें नजाने कितने खेल किये थे।एक दिन शरद्-ऋतु की चांदनी में आधी रात्रि के समय सकल संसारके सोजाने पर यमुना के किनारे,वनमालासे सुशोभित मदनमोहन वेशमें तुमने बंशी बजाकर अनन्त रूपकी भण्डार श्रीमती राधादेवी और उसकी सखियों को साथमेंले अलौकिक रासलीला करके त्रिलोकी को मुग्ध करदिया था गौएं चराते २ ग्वालबाल कालीदहके विषैले जल को पीकर प्राणहीन होगए तब तुमने कृत्रिम कोपके साथ नेत्रोंको लालर करके कालीदह में छलांग मारी थी और कालिय नागको युद्धके लिये पुकार उसके हजारों फणों को कुचल शेष बचे फणके ऊपर त्रिभङ्गाकार से खड़े होकर बंशीको बजातेर मृत ग्वालबाल आदिके शरीरोंमें प्राणसञ्चार-

किया था।एक दिन देवराज इन्द्रका घमण्ड ढानेके लिये बहुतसे गो
गोपियोंके समूहमें अकेलेही एक छोटेसे हाथकी कन अँगुली पर गो
र्द्धन पर्वत को उठाकर अटूट जलधाराओंसे उनकी रक्षा की थी। कि
राजवेशसे भूषित होकर समय २ पर कंस शिशुपाल आदिको उन
पापका फल देनेके लिये हाथमें चक्र लियेहुए सभामें बैठेहुए अपने भ
को मुग्ध करदिया था। जिस दिन युधिष्ठिरकी राजसभामें इकट्ठे हु
कौरव पाण्डव तथा अन्य क्षत्रियोंके मध्यमें दुःशासन एक वस्त्रधारि
द्रौपदीको केश पकड़ कर घसीटता हुआ लाया था और उसको स
के सामने नंगी करनेकी चेष्टा करनेलगा था,उस समय द्रौपदीने घब
कर सबसे ही बचानेकी प्रार्थनाकी थी,अनेक कारणोंसे जब किसी
भी उसको आश्रय नहीं दिया तब अन्तमें जिससमय सर्वथा अना
और भयभीत हो, सबोंका ही भरोसा छोड़ आँखोंमें आँसूभर हा
जोड़ आकाशकी ओरको देखकर आपकी शरण ली थी तब तुमने
आकाश में ही ज्योतिर्मय नील मेघ के स्वरूपसे उसको दर्शन दिय
था और बिजलीकी चमकरूप हास्यके द्वारा उसको ढाढस देकर
अलक्षितरूपसे धरातलमें अवतीर्ण हो वस्त्ररूपसे द्रौपदीको लपे
दिया और सबके सामने उसका लज्जा रखली थी फिर जिस समय
कुरुक्षेत्रके युद्धसे पहिले अर्जुन शोक मोहसे दब कर युद्ध करनेसे
मुख मोड़ बैठा उस समय तुमने उसके रथके घोड़ोंकी रासे हाथमें
लियेहुए उसको नानाप्रकारसे योगका उपदेश दिया और अन्तमें उस
के सामने अपनी विराटमूर्त्तिमें प्रकट होकर उसको शान्त किया।
युद्धका आरम्भ होनेपर एक दिन भीष्मपितामहने प्रतिज्ञा करी,कि
तुम्हें शस्त्रधारण कराकर तुम्हारी प्रतिज्ञाको तोड़दूँगा और उस
प्रतिज्ञाको अटल रखनेके लिये युद्धके समय जब तुम अर्जुनके रथपर
बैठकर उसका सारथीपन कररहे थे, उस समय भीष्मजीने बाणों की
वर्षासे तुम्हारे शरीरको छिन्न भिन्न करडाला तब तुम मानो आपा
क्रोधमें भरकर रथका पहिया हाथमें ले विश्वसंहारमूर्त्तिसे धरातलको
कपातेहुए भीष्मजीके ऊपर आक्रमण करनेको दौड़े थे। प्रतिज्ञाकी
रक्षाके लिये उद्विग्नचित्त क्षत्रियप्रवर भीष्मजी अबतक हरएक बाण
को छोड़ते समय जिसमें गदगद हो २ कर तुम्हारी शरण लेरहे थे, परन्तु
आपको हाथमें पहिया लेकर आतेहुए देखकर गद्गद कण्ठमें आन
न्दके आँसूभर आगे और धनुषको फेंककर हाथ जोड़ेहुए आपकी
स्तुति करनेलगे। आपके चरित्रोंकी जो कुछ गिनती हो सकी है,
कर आपके लीला करोंका वर्णन करें? साक्षात् महादेवजी भी

तुम्हारे कर्मोका ज्ञान न पाकर केवल तुम्हारे नाममात्रको ही रात दिन रटते हैं। तुम्हारी सब ही मूर्त्ति सुन्दर हैं, सब ही रूप मनोहर हैं। तुम अनेकों अवतारों में अनेकों मूर्त्ति धारण करके सृष्टि की रक्षा करते हो।मत्स्य मूर्त्तिसे वेदकी रक्षा की,कूर्ममूर्त्ति से पृथ्वीको धारण किया,वराह मूर्त्ति से पृथ्वीको उधारा,नृसिंहमूर्त्ति से हिरण्य कशिपुका वध किया, वामन मूर्त्तिमें बलिके हाथसे पृथ्वी और स्वर्गका उद्धार करके देवताओं को दिया, परशुराम होकर क्षत्रियोंका दमन किया रामावतार धारकर रावणको मार सीताका उद्धार किया और इसी अवतारकी लीलाओंसे जीवोंको मुक्तिका उपाय बता दिया। बुद्ध मूर्त्तिसे जीवोंके करुणाहीन मार्गोंमें दयाका सञ्चार करके बनको फिर सन्मार्गमें लाये थे. आगेको भी आप ही कल्किरूपसे जगत्के सकल पापोंका नाशकरके फिर सत्ययुगको लौटाओगे। तुम जो गीतामें कहते हो "यो मां पश्यति सर्वत्र" कहिये इन मूर्त्तियोंमेंसे कौनके लिये भयभीत रूपसे धीरे २ उनके चरण छूनेको हाथ बढ़ाकर हटाये हुए चरणसे बढ़ाहुआ हाथ भूमिमें रखकर कातर नेत्रोंसे उनके मुखकी ओरको देखा था। एक समय एक पूर्णिमाकी रातमें कुञ्जकाओ मात्रमें आपको सर्वत्र देखना होगा? तुम कभी श्वेत, कभी कृष्ण, कभी पुरुष और कभी स्त्रीरूपमें विराजते हो। तुम कभी शङ्ख-चक्र गदा—पद्मधारी, कभी अक्षसूत्र कमण्डलुधारी, कभी त्रिशूल—डमरू-धारी, कभी श्यामा कभी श्याम, कभी शिव और कभी राम हो, तुम ही बता दो किस मूर्त्तिमें आपको देखूं जिस रूपको देखताहूँ वही सुन्दर है क्योंकि—सब रूप ही तुम्हारे हैं। इस समस्त सौन्दर्यकी ओर ध्यान जानेपर मैं भौचक्कासा होजाताहूँ, सोचने लगता हूँ कि कौन देखे? और क्या देखाजाय? चारों ओर मानो बस ही रूपसा-गरकी तरङ्गे बहुल रही हैं, और कुछ तो है ही नहीं। न 'यः' है, न 'माम्' है, न 'पश्यति' है। जो कुछ है उसका तो वर्णन ही नहीं होस-कता। यह मैं भी नहीं हूँ,तुम भी नहीं हो और दोनों उसमें ही समाये हुए हैं, परन्तु जबतक उस अनन्तरूपके ऊपर दृष्टि नहीं पड़ती है तबतक "यो मां पश्यति सर्वत्र,, इसका अर्थ ही क्या?। मेरी समझ में यहाँ किसी एक मूर्त्ति या किसी एक रूपकी बात नहीं कही है। जब सब ही तुम्हारी मूर्त्ति हैं तो उसमें यह यह करनेकी आवश्यकता ही क्या है? हम चाहे जिसका अवलम्ब लेलें वह ही जब तुम्हारी मूर्त्ति है तो उसमें आगा पीछा करना। असल तत्त्व यह है, कि—जब सब ही आपका रूप है तो आपका स्मरण रखते हुए चाहे जिस एक

मूर्त्तिमें ही हम आपका सर्वत्र दर्शन करसकते हैं । जिसको जो मूर्त्ति अच्छीलगे वह उस मूर्त्तिमें ही आपका दर्शन करे इसकारण पुराण आदि शास्त्रोंमें अनेकों मूर्त्तियोंमें और अनेकों भावोंमें आपका वर्णन किया है । जो जिस मूर्त्तिका भक्त है, जो जिस भावका भक्त है, वह उस ही मूर्त्तिमें उस ही भावमें आपका दर्शन करता है, उसमें ही उसकी इष्टसिद्धि होती है, जीवनका उद्देश्य सफल होता है।

"यो मां पश्यति सर्वत्र" आपके इस वाक्यका अर्थ मेरी समझमें तो यही आता है, कि-चाहे कोई भी मूर्त्ति हो उसमें आपका दर्शन करना चाहिये । परन्तु यह समझमें नहीं आता कि-एक वारके दर्शन से क्या होगा ? प्रातःकाल स्नानके अनन्तर एक वार मन्दिरमें जाकर तुम्हारा दर्शन किया अथवा पूजा करनेको वैठकर ध्यानमें एक वार आपको देखलिया इतनेसे कार्यसिद्धि नहीं होसकती, यह एक वारका देखना यथार्थ दृष्टिका देखना नहीं है, इस दर्शनका आरम्भ होने पर फिर इसकी समाप्ति नहीं होनी चाहिये, किन्तु सर्वत्र आपको देखना होगा, इस देखनेका आरम्भ तो चक्षुके द्वारा होगा, परन्तु इसकी चरमोन्नति तब ही होगी, जब यह दर्शन सब ओरसे ही इन्द्रियोंके द्वारा होनेलगेगा, उस समय दर्शन और अनुभव एक होजायगा। उस समय स्थूल सूक्ष्म, भली बुरी, सब ही वस्तुओंमें आप दीखनेलगेंगे। उस समय आपका आकाश, भूमि, समुद्र, चन्द्र, सूर्य, तारागण पर्वत, नदी, वृक्ष, जल, वायु, और मेघ आदि सबोंमें ही दर्शन होगा पुरुष, नारी, बालक, वृद्ध, पशु, पक्षी, और कीट पतङ्ग आदिमें सर्वत्र ही तुम्हारा दर्शन होगा। दीखेगा, कि—बडेसे बडेमें भी तुम ही हो और छोटेसे छोटेमें भी तुम ही हो। ऊँचेमें, नीचेमें, ऊपर, नीचे चारों दिशाओंमें, दूर, समीप, स्वर्गमें, नरकमें प्रकाशमें, अन्धकारमें, पापमें और पुण्यमें सर्वत्र तुम ही हो । देवताओंमें मनुष्योंमें मित्रमें और शत्रुमें तुम ही हो । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धमें तुम ही हो । मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कार और प्राणोंमें तुम ही हो । पाञ्चभौतिक शरीर, पञ्चभूत और इन्द्रियोंमें तुम ही हो तथा इन्द्रियातीत भी तुम ही हो। दीखने लगेगा कि—काम क्रोध आदि विकारोंमें शम दम आदि साधनोंमें, योगमें भोगमें, सुखमें दुःखमें, विपत्तिमें और सम्पत्तिमें तुम ही हो । आप ही आधि व्याधिमें हो, आप ही जन्म मृत्युमें हो, आप ही सृष्टि स्थिति और प्रलयमें हो, आपका दर्शन बड़ा ही अद्भुत है, परन्तु ऐसा दर्शन हो कैसे ? इन चराचर वस्तुओंका दर्शन किस विधिसे कियाजाय ?

जब चक्षुके द्वारा निकल कर जब किसी वस्तुपै पड़ता है तो उस

के ही आकारका बनजाता है और उस आकारवाले चित्तको देखते ही उस वस्तुका दर्शन होजाता है, और २ इन्द्रियोंके विषयमें भी यही बात है। लोग घट पट आदिको नहीं देखते हैं, किन्तु अपने २ चित्तको ही देखते हैं। इसलिये जो कुछ देखना हो अर्थात् तुम्हारा कोई रूप विशेष जैसे, कि—"एक„ यह रूप जिसमें देखना होगा वह विस्तीर्ण "सर्वत्र„ संकुचित होकर एक चित्त रूपमें ही परिणत होजाता है मैं अपने मनमें समझ रहा था, कि—बहुतसे स्थानोंमें आपका दर्शन करना बड़ा ही कठिन है, परन्तु एक चित्तमें ही आपको देखना इसमें कुछ सहज मालूम होताहै। इस चित्तमें ही यदि तुम्हारी मूर्त्ति और भावको यदि सोलह आना भरलियाजाय तो दृष्टि अन्य वस्तु पर पड़ने पर भी चित्त उस वस्तुके आकारका नहीं होगा इसकारण अन्य वस्तुका दर्शन न होकर सर्वत्र आपका ही दर्शन होगा फिर आपके लिये ही दृष्टिको स्थित रखकर उसमें सब वस्तुओंका दर्शन करना होगा अर्थात् तुमसे ही सब कामनायें पूरी करनी होंगी। किस वस्तुकी इच्छा करके देखूँ कि—जिसको देखकर सुख पाऊँ। सुखको कैसे पाऊँ? जिससे, कि—सब अभाव दूर हों, इसप्रकार तुम्हारे लिये सब वस्तुओंके दर्शन करनेका मर्म यह है, कि—मुझे जिस किसी वस्तुकी भी कमी पड़े, जो आपको देखता है उसके सब अभाव दूर होजाते हैं, तुम सब रसोंके आधार हो तुममें किसी वस्तुका अभाव है ही नहीं, आपको देखकर आपको पाकर यदि सब ही रसोंका स्वाद आजाय किसी वस्तुकी कमी न रहे तो "सर्वत्र मयि पश्यति„ यह भावना सिद्ध होजाय।

—०—

पराशरस्मृतिमें सधवाविवाह

आजकल अंग्रेजी पढ़कर अंग्रेजोंकी नकल करनेपर उतारू हुए तथा भारतके अलङ्कारस्वरूप चिरदिन आध्यात्मिकभावकी ओरको दृष्टि उठाकर भी न देखनेवाले और कुक्करसूकरकी समान विषयभोगको ही मनुष्य जन्मका परमफल माननेवाले कितने ही छिछोरे बालकोंने विधवाविवाहको खिलौना बना रक्खा है, जिधरको कान लगाओ उधरसे ही विधवाविवाहके आन्दोलनका हुल्लड़ सुनाई आता है परन्तु सधवा (पतिवाली) के पुनर्विवाहकी बात सुननेमें नहीं आती, जो लोग विधवाओंके दुःखसे दुःखी होते हैं वे विधवाओंसे भी अधिक दुःखी रहनेवाली सधवाओंका दुःख घटानेमें एक उपाय

समझते हैं. कदाचित् वे कहेंगे, कि—हमें तो विधवाओंके जोड़ मिला कर उनका दुःख दूरकरनेमेंही फुरसत नहीं है, इसलिये हम चुप हैं, परन्तु जिनकी दुहाई देकर, रात दिन "नष्टे मृते प्रव्रजिते इत्यादि" श्लोककी माला फेर कर वे अपनी मनमानी व्यवस्थासे विधवाओं को विषयसुखसे सुखी कर रहे हैं वह पराशर भी चुप नहीं हैं, इसकारण ही आज हम विधवा विवाह के पक्षियोंसे कुछ सधवाविवाहके विषय में कहने को साहसी हुए हैं।

जिन लोगोंने अपना यह विश्वास बना रक्खा है, कि—विधवा विवाह शास्त्रमें लिखा हुआ है, वेलोग अधिकतर पराशरस्मृतिके "नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ। पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते॥" इस श्लोक को ही प्रमाणरूप से पेश किया करते हैं, परन्तु इस श्लोककी आलोचना करते हुए भी वे लोग सधवाके पुनर्विवाहका प्रस्ताव क्यों नहीं उठाते यह बात समझमें नहीं आती। इस बातको पढ़कर बहुतसे महाशय कहेंगे, कि—यह क्या गोरख धन्धा है?, उनका सन्देह दूर करनेके लिये हम खुलासा लिखेदेते हैं, कि—इस "नष्टे मृते इत्यादि" श्लोकमें सधवाके पुनर्विवाह की बात भी लिखीहै, जिसको कि—हम इस लेखमें दिखावेंगे।

हिन्दूशास्त्रोंका मूल आधार वेद है, उस वेदके, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष ये छः अङ्ग हैं। इनमें कल्प तीन भागोंमें बटा हुआ है, १ श्रौतसूत्र २ गृह्यसूत्र ३ और धर्मसूत्र। श्रौतसूत्रों में वैदिक यज्ञ आदिका वर्णन है, गृह्य और धर्मसूत्रोंमें स्मार्त्त धर्मकी बातें हैं। लाट्यायन आदि श्रौतसूत्र मिलते हैं। गृह्यसूत्रोंमें आश्वलायन, आपस्तम्ब, गोभिल, सांख्यायन आदि सूत्रोंका पता मिलता है। धर्मसूत्रोंमें आपस्तम्ब आदिके कुछ सूत्रग्रन्थ मिलतेहैं। इनके सिवाय मनु आदिके रचेहुए कुछ स्मृतिग्रन्थ या संहिताग्रन्थ भी हैं। ये गृह्यसूत्र, धर्मसूत्र या स्मृति संहितायें ही हमारा धर्मशास्त्र या स्मृतिशास्त्र हैं और इस धर्मशास्त्रके अनुसार ही नवीन संग्रह ग्रन्थ भी बने हैं तथा इनके अनुसार ही हमारे सब धर्म कर्म होते हैं। कहीं स्मृतितत्त्व मानाजाता है तो कहीं निर्णयसिन्धु माना जाता है, एक जगह पराशर माधवका आश्रय है तो दूसरे देशमें मिताक्षराका प्रचार है, यही सब आजकल स्मृतिशास्त्र हैं। इन को [illegible] ही स्मार्त्त पण्डित कहलाता है, परन्तु सब संग्रहग्रन्थ [illegible] और पुराणोंके आधारपर ही रचे गयहैं। इन स्मृति संहिता-

वोंका उल्लेख वेद के छः अङ्गोंमें नहीं पायाजाता, इसकारण अनेकों का कथन है, कि—स्मृतियें धर्मसूत्रोंकी सन्तान हैं। ऋषियोंने धर्मसूत्र रचकर अपने शिष्योंको पढ़ाये और पीछे शिष्योंने उन सूत्रोंका मर्म लेकर संहिता या स्मृति नामसे उपदेशपूर्ण ग्रन्थ रच-दिये, यही आजकलका स्मृतिशास्त्र या धर्मशास्त्र हैं। चाहे जैसे भी रचीगई हों परन्तु संहितायें हमारा धर्मशास्त्र हैं, सनातनधर्मकी एक मूल हैं, इसमें कुछ सन्देह नहीं है।

संहितायें बहुतसी हैं, उनमें मनु अत्रि आदिकी बीस संहितायें अधिक प्रसिद्ध हैं। मनु अत्रि आदिमें भी नवीन प्रवीणका भेद है, वृद्धमनु, वृद्ध हारीत, वृद्ध वसिष्ठ आदिके शास्त्रोंका उल्लेख प्रायः देखनेमें आताहै, अत्रिसंहिता तीन पाईजाती हैं, लघु अत्रिसंहिता, वृद्ध अत्रिसंहिता और अत्रिसंहिता, ऐसे ही हारीत, गोतम, वसिष्ठ आदिकीभी वृद्ध और लघु संहिताओंका पता मिलता है, पराशरकी भी वृहत् और लघु संहितायें हैं। इनमें पराशरकी लघुसंहिता बारह अध्यायोंमें समाप्त हुई है, उसमें ही यह 'नष्टे मृते प्रव्रजिते इत्यादि' श्लोक देखनेमें आता है। वृद्ध पराशरसंहिताके भी बारह ही अध्याय हैं, उसके अध्याय भी वास्तवमें वृद्ध (बड़े २ ही हैं, इसीसे यह लघुसंहिताकी अपेक्षा वृद्ध है। जो कुछ भी हो, परन्तु हमको यहां लघुपाराशरसंहिताके एक वचनकी ही यहां आलोचना करनी है। लघुपाराशरी के चौथे अध्यायमें लिखा है, कि—

> नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीवे च पतिते पतौ ।
> पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो विधीयते ॥

सरलरूपसे अर्थ करने पर इस श्लोकका यही भाव है, कि—जिसका पति नष्ट, मृत, प्रव्रजित, क्लीव, और पतित होजाय उस विपत्तिग्रस्त नारीका अन्य पति विहित होगा। वास्तवमें यह वचन हृदयमें चुभता है। पति नष्ट अर्थात् लापता होजाय, मरजाय, सन्यासी होजाय, क्लीव होजाय और पतित होजाय तो स्त्रीको जीवनभर सुख शान्ति नहीं मिलसकती, इसकारण उसके लिये और एक पतिकी व्यवस्था होना उचितसा ही प्रतीत होता है। अनेकों बालविधवाओंकी दशाको देखकर इस वचनका यह सरल अर्थ करनेकी इच्छा क्यों न हो ?। अब बात यह है, कि—इस समय हम जिन आधुनिक विद्वानोंके मतको मानकर चलते हैं, वे इस वचन के ऐसे अर्थको नहीं मानते, वे इस श्लोकमें के पति शब्दका अर्थ 'वाग्दत्त पति, करते हैं और इस श्लोकको वाग्दानके प्रसङ्गका ही बताते

हैं । आधुनिक विद्वान् यहाँ रूप न बनता देखकर व्याकरणके दोषों
हटानेके लिये यहाँ एक लुप्त अकार मानकर 'अपतौ' पाठ बनाते हैं
और उस अकार (नञ्) का सादृश्य अर्थ मानकर 'अपति' शब्द
का अर्थ—'पतिके सदृश, अर्थात् जिसको वाग्दानके द्वारा कन्या देनेका
निश्चय होगया है वह वाग्दत्त पति ही अपति है ऐसा कहते हैं । इस
लिये वाग्दत्त पतिका पता न मिले, वह मरजाय, संन्यासी होजाय, वा
वे नपुंसक होनेका निश्चय होजाय अथवा वह पतित होजाय तो कन्या
को उस वरके भरोसे न रखकर अन्य वरके साथ विवाह करदेना चाहिये
यही इस श्लोकका अभिप्राय है । परन्तु कलियुगमें शास्त्रमें लिखी हुई
विधिसे वाग्दान होना हुआ नहीं देखाजाता, इसलिये प्रसिद्ध विद्वान्
वेदभाष्यकार माधवाचार्य पराशरके इस श्लोककी व्याख्यामें कहते
हैं, कि—"अयन्तु पुनरुद्वाहो युगान्तरविषयः ।,, यह उन्होंने वाग्दत्त
पतिके विषयमें ही इस वचनके तात्पर्यका इशारा किया है । जो कुछ
भी हो, इस लेखमें हमें विधवाविवाहकी आलोचना नहीं करनी है,
इसलिये इस विषयमें अब हम आगे नहीं बढ़ते ।

हमारा कहना तो यह है, कि-जो लोग "नष्टे मृते" इत्यादि श्लोक
के द्वारा विवाहित नारीका पति मरण आदि विपत्तिकालमें फिर विवाह
करदेनेकी हठ पकड़े हुए हैं वे इस श्लोकके शेष अंशकी उपेक्षा क्यों
करते हैं ? । पराशर तो कहते हैं, कि— पति नष्ट होजाय तो स्त्रीका
फिर विवाह करदो । जो देशान्तरमें हो बहुत दिनोंतक जिसका संवाद
न मिले ऐसे पुरुषको ही विद्वान् नष्ट कहते हैं । नष्ट पदार्थका अर्थ
होता है—खोया हुआ पदार्थ । मरे हुएके लिये अलग 'मृत, शब्द होने
से यहाँ नष्ट शब्दका अर्थ खोयाहुआ (लापता) ही मानना होगा।
अब बात यह है, कि—यदि लापता पुरुषकी स्त्री पुनर्विवाह करसकती
है तब तो बड़ा ही गोलमाल होगा, क्योंकि—कितने दिन विदेशमें
रहकर संवाद न देनेसे वह नष्ट मानाजाय इसका तो कोई नियम लिखा
ही नहीं है । यदि कोई पतिसे अप्रसन्न रहनेवाली स्त्री १० । १५
दिन विदेशमें रहनेवाले पतिका पत्र न मिलने पर यदि अपना पुन-
र्विवाह करनेको तयार होजाय तो ? । यदि पतिके संन्यासी होने पर
स्त्रीको पुनर्विवाह करलेनेका अधिकार होगया तब भी तो थोड़ी
विपत्तिकी बात नहीं है ? । क्योंकि—आजकल बहुतसे नवयुवक
पन्थाई संन्यासियोंके बहकावेमें आकर मूर्खतावश घरमें स्त्रीके होते
हुए शिर मुँडाकर संन्यासी बनजाते हैं, ऐसे धोखेमें आयेहुओंको
माता पिता समाचार पाने पर लौटालानेका उद्योग किया

करते हैं, यदि ऐसी दशामें उनकी स्त्रियें पीछे अपना पुनर्विवाह कर बैठें तो क्या थोड़ी विपत्तिकी बात है ? । अब रही क्लीबकी बात । शास्त्रमें प्रथम पातरेता आदि कितने ही प्रकारके क्लीब लिखे हैं, उनमें से बहुतसोंमें फिर पुंस्त्व लौटकर आसकता है, यदि गहरी आलोचना कीजाय तो आजकल कुशिक्षा और कुसङ्गवश जिनकी रगें शिथिल पड़जाती हैं ऐसे स्नायविक दुर्बलतासे पीड़ित नजाने कितने मनुष्य ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदिमें मिलेंगे, कि—जिनकी क्लीबोंमें ही गिनती होगी परन्तु यह क्लीबता दूर होकर कितने ही में फिर पुंस्त्व आजाता है ऐसे क्लीबोंकी स्त्रियें यदि पुनर्विवाह की अधिकारिणी होगईं तो क्या परिणाम निकलेगा, इस बात पर विचारशील स्वयं ध्यान देवेंगे । अब बाकी रहा पतितकी स्त्रीका पुनर्विवाह इस बातको विचारते ही ऊहापोह होने लगता है, कि—इस पर कुछ कहें या नहीं । महापातक अतिपातक आदि बडे २ पातकोंसे कलुषित पुरुष पतित मानेजायँगे, इसमें तो कुछ सन्देह है ही नहीं । ब्रह्महत्या, मद्यपान, सुवर्णकी चोरी, गुरुपत्नी गमन, मातृ गमन, पुत्रीगमन, पुत्रवधूगमन आदि बडे पाप हैं, यह शास्त्रोंमें लिखा हैं, इनमेंसे कितने ही पापोंकी बात हमारे कानों तक न पहुँचसकती हो यह दूसरी बात है, परन्तु दो एक पापोंकी चर्चा तो सुननेमें आही जाती है ? अब हम पापकी बात अधिक नहीं कहना चाहते, क्योंकि—"कथा हि खलु पापानामलमश्रेयसे यतः ।" पापोंकी बात कहनेमें भी अवश्य ही कुछ न कुछ अमङ्गल होता है, इसलिये हम संक्षेपमें इतना ही कह देते हैं, कि-जिन बातोंको सुनकर भी कानों पर उँगली धरनी पड़ती है ऐसे घोर पाप भी आजकल द्विज समाज में नहीं हैं यह बात नहीं है । वर्त्तमान द्विजसमाजमें बहुतसे लोग शास्त्रकी दृष्टिसे पतित बनगए है, इस बातको न कहनेमें सत्यकी हत्या होती है । वर्त्तमान समाज सैंकड़ों सहस्रों पतितोंको अपने विशाल उदर स्थान दियेहुए है, शास्त्रकी दृष्टिमें तो वे पतित ही हैं, तिसपर भी नई २ सृष्टि करके द्विजसमाजमें पापके प्रवाहको बढा याजा रहाहै । ऐसे पुरुषोंकी स्त्रियें अपना पुनर्विवाह करसकती हैं, यह बात यदि धारस्मृतमें पराशरजीने कही हो तब तो हम अधिक न कहकर इतना ही कहना चाहते हैं, कि—वह एक वार आकर वर्त्तमान द्विजसमाजको देखजाते तो अवश्य ही अपनी भूल सुधारने के लिये व्याकुल हो उठते, यदि कहो, कि—पराशरजीको यह नहीं मालूम था कि—आगेको द्विजसमाजकी ऐसी अधोगति होजायगी

तो हमारा यह उत्तर है कि-पराशरने तो स्वयं ही अपनेको कलि धर्मशास्त्रकार लिखा है। इस लघुपाराशरीमें ही यह लिखते हैं

कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमो मतः।
द्वापरे शंखलिखितौ कलौ पाराशरस्मृतिः॥

अर्थात्—सत्ययुग में मनुका धर्मशास्त्र प्रधान, त्रेतामें गोतम द्वापरमें शंखलिखितका और कलियुगमें पराशर का धर्मशास्त्र प्र है। पराशरके वचन को माननेवालोंको इस लेख पर विशेष ध्यान देना चाहिये। सार यह है, कि—पराशरने विधवाके पुनर्विवाह आज्ञा दी हो, इस बात पर विश्वास नहीं होता, क्योंकि—इस को मानाजाय तब तो यह भी मानना होगा, कि—उन्होंने सधवा विवाहकी बात भी कही है और यदि ऐसा ही होता तो पराशरजी कलियुगके लिये पहिले ही "डाइवोर्स" अर्थात् पतिपरित्यागका उपदेश देजाते, परन्तु यह बात कभी नहीं मानी जासकती क्योंकि पराशर वेदव्यासजीके पिता थे, यदि उनका ऐसा भाव होता तो क्या वह ऐसी प्रथा चला नहीं सकते थे?।

हमारी समझमें तो पराशरजीके नष्टे मृते इत्यादि श्लोक का यह अर्थ ही नहीं है, इस पर बहुतसे लोग कहेंगे कि-माधवाचार्य आदि ने भी तो इस वचनको ऐसे ही लिखा है। परन्तु हमने एक पुरानी पराशरस्मृति में पतिरन्यो विधीयते के स्थानमें पतिरन्यो न विद्यते ऐसा पाठ देखा है। ३० वर्ष पहिले शाके १८०५ में बंबईके ज्ञानदर्पण प्रेसमें एक अष्टाविंशति स्मृतियोंका संग्रह छपा था उसमें लघुपारा शरी स्मृति भी थी उसमें पतिरन्यो न विद्यते यही पाठ था जिसका अर्थ यह होता है कि पतिकेनष्ट मरण आदि विपत्तियोंमें भी स्त्रियोंको अन्य पति नहीं करना चाहिये. इसमें क्या बुराई है। इसकी अनुकूलतामें प्रमाण यह है कि-नष्टे मृते इत्यादि श्लोकके बाद ही पराशर जी लिखते हैं कि—

मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा सद्ब्रह्मचारिणः॥

अर्थात्-पतिके मरणके बाद जो स्त्री ब्रह्मचर्य धारण करके रहती है वह ब्रह्मचारियोंकी समान स्वर्गमें जाती है। इससे अगला जो श्लोक है उसका यह अर्थ है कि-जो स्त्री सहमरण करती है वह पुरुषके शरीरमें जितने रोम होते हैं उतने वर्षों स्वर्गमें रहती है। उससे अगले श्लोकका यह अर्थ है, कि सपेरा जैसे सांपको भट्टे ... लेता है वैसे ही पतिव्रता अपने पतिका उद्धार करके

उसके साथ आनन्द भोगती है। इतना लिखकर ही इस अध्यायको समाप्त करदिया है। अब विचारनेकी बात कि—'नष्टे मृते,के बादका केवल पतिव्रताका प्रशंसावाद है और उस पर ही अध्याय पूरा कर दिया है। तब 'नष्टे मृते इत्यादि, श्लोकमें पराशरने यह कहा है कि पतिके ब्रह्महत्यारूप पातकसे पतित होने पर उसकी स्त्री दूसरा पति करसकती है, यह कैसे मानलियाजाय और यदि ऐसा ही अभिप्राय था तो फिर अगले तीन श्लोकों में (जिनमें कि—अध्याय को समाप्त किया है) किस मुखसे पतिहीना नारीके लिये ब्रह्मचर्य और अनुगमन लिखगए हैं ?। अन्य पति करनेकी बात क्या ब्रह्मचर्य और अनुगमनके वर्णनसे पूरी होसकती है ? इसलिये बुद्धिमान् पढ़े लिखे लोगोंसे हमारी प्रार्थना है, कि—यह एक बार इस श्लोकका ध्यान देकर विचार करें। विधवाविवाहके पक्षियोंका केवल यह श्लोक ही अस्त्र नहीं है,किन्तु उनकी और भी बहुतसी बातें हैं,हम इस लेखमें उन पर विचार करना नहीं चाहते,क्योंकि-यह लेख विधवाविवाहकी आलोचनाके लिये नहीं लिखागया है, अतः पराशरके 'नष्टे मृते इत्यादि , श्लोक को विधवाविवाहका समर्थक मानने पर उसके द्वारा सधवाविवाह भी पूर्णरूपसे सिद्ध होगा,यह बात दिखाकर इसके गूढ तत्त्वकी आलोचना करनेका अनुरोध करतेहुए अब हम इस लेखको समाप्त करते हैं, आवश्यकता होनेपर फिर कभी कुछ कहेंगे।

श्री पं० स्मृतितीर्थ (हि० प०)

...र्य-जीवन

...गे)

... पुराणोंमें पुत्रोंके धर्म
... किया है तथा गुरुजनोंकी
... प्रसिद्ध है। माता पिता
... करके तथा बड़ा
... कायनोंको ...
...

तो हमारा यह उत्तर है कि-पराशरने तो स्वयं ही अपनेको कलिका धर्मशास्त्रकार लिखा है। इस लघुपाराशरीमें ही यह लिखते हैं कि-

कृते तु मानवो धर्मस्त्रेतायां गौतमो मतः।
द्वापरे शंखलिखितौ कलौ पाराशरस्मृतिः॥

अर्थात्—सत्ययुग में मनुका धर्मशास्त्र प्रधान, त्रेतामें गौतमका, द्वापरमें शंखलिखितका और कलियुगमें पराशर का धर्मशास्त्र प्रधान है। पराशरके वचन को माननेवालोंको इस लेख पर विशेष ध्यान देना चाहिये। सार यह है, कि—पराशरने विधवाके पुनर्विवाहकी आज्ञा दी हो, इस बात पर विश्वास नहीं होता, क्योंकि—इस बात को मानाजाय तब तो यह भी मानना होगा, कि—उन्होंने सधवाके विवाहकी बात भी कही है और यदि ऐसा ही होता तो पराशरजी कलियुगके लिये पहिले ही "डाइवोर्स" अर्थात् पतिपरित्यागका उपदेश देजाते, परन्तु यह बात कभी नहीं मानी जासकती क्योंकि-पराशर वेदव्यासजीके पिता थे, यदि उनका ऐसा भाव होता तो क्या वह ऐसी प्रथा चला नहीं सकते थे?।

हमारी समझमें तो पाराशरजीके नष्टे मृते इत्यादि श्लोक का यह अर्थ ही नहीं है, इस पर बहुतसे लोग कहेंगे कि-माधवाचार्य आदि ने भी तो इस वचनका ऐसे ही लिखा है। परन्तु हमने एक पुरानी पराशरस्मृति में पतिरन्यो विधीयते के स्थानमें पतिरन्यो न विद्यते ऐसा पाठ देखा है। ३० वर्ष पहिले शाके १८०५ में बंबईके ज्ञानदर्पण प्रेसमें एक अष्टाविंशति स्मृतियोंका संग्रह छपा था उसमें लघुपारा- शरी स्मृति भी थी उसमें पतिरन्यो न विद्यते यही पाठ था जिसका अर्थ यह होता है कि पतिकेनष्ट मरण आदि विपत्तियोंमें भी स्त्रियोंको अन्य पति नहीं करना चाहिये. इसमें क्या बुराई है। इसकी अनु- कूलतामें प्रमाण यह है कि-नष्टे मृते इत्यादि श्लोकके बाद ही पराशर जी लिखते हैं कि—

मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता।
सा मृता लभते स्वर्गं यथा सद्ब्रह्मचारिणः॥

अर्थात्-पतिके मरणके बाद जो स्त्री ब्रह्मचर्य धारण करके रह[illegible] है वह ब्रह्मचारियोंकी समान स्वर्गमें जाती है। इससे अगला [illegible] श्लोक है उसका यह अर्थ है कि-जो स्त्री सहमरण करती है [illegible] " जितने रोम होते हैं उतने वर्षों स्वर्गमें रहती है [illegible] यह अर्थ है, कि-सपेरा जैसे सांपको [illegible] ही पतिव्रता अपने पतिका उद्धार क[illegible]

उसके साथ आनन्द भोगती है। इतना लिखकर ही इस अध्यायको समाप्त करदिया है। अब विचारनेकी बात कि—'नष्टे मृते,के बादका लेख पतिव्रताका पशंसावाद है और उस पर ही अध्याय पूरा कर दिया है। तब 'नष्टे मृते इत्यादि, श्लोकमें पराशरने यह कहा है कि पतिके ब्रह्महत्यारूप पातकसे पतित होने पर उसकी स्त्री दूसरा पति करसकती है, यह कैसे मानलियाजाय और यदि ऐसा ही अभिप्राय था तो फिर अगले तीन श्लोकों में (जिनमें कि—अध्याय को समाप्त किया है) किस मुखसे पतिहीना नारीके लिये ब्रह्मचर्य और अनुगमन लिखगए हैं?। अन्य पति करनेकी बात क्या ब्रह्मचर्य और अनुगमनके वर्णनसे पूरी होसकती है? इसलिये बुद्धिमान् पढे लिखे लोगोंसे हमारी प्रार्थना है, कि—यह एक बार इस श्लोकका ध्यान देकर विचार करें। विधवाविवाहके पक्षियोंका केवल यह श्लोक ही अस्त्र नहीं है,किन्तु उनकी और भी बहुतसी बातें हैं,हम इस लेखमें उन पर विचार करना नहीं चाहते,क्योंकि-यह लेख विधवाविवाहकी आलोचनाके लिये नहीं लिखागया है, अतः पराशरके 'नष्टे मृते इत्यादि , श्लोक को विधवाविवाहका समर्थक मानने पर उसके द्वारा सधवाविवाह भी पूर्णरूपसे सिद्ध होगा,यह बात दिखाकर इसके गूढ तत्त्वकी आलोचना करनेका अनुरोध करतेहुए अब हम इस लेखको समाप्त करते हैं, आवश्यकता होनेपर फिर कभी कुछ कहेंगे।

श्री के॰ स्मृतितीर्थ (हि॰ प्र॰)

—०—

प्राचीन-आर्य-जीवन

(गतांक से आगे)

पुत्रके धर्म—

प्राचीन आर्योंके धर्मशास्त्रोंमें और इतिहास पुराणोंमें पुत्रोंके धर्म और उनके चरित्रोंके विषयमें बहुत कुछ लिखा है तथा गुरुजनोंकी सेवाके विषय में भी भारतवर्ष चिरकालसे प्रसिद्ध है। माता पिता अपने पुत्रको उत्पन्न करके उसका पालन पोषण करनेमें तथा बडा होजाने पर उसको शिक्षा देकर उसके सुखके सब साधनोंको पूर्ण करनेमें निःस्वार्थ भावसे जो कष्टोंको उठातेहैं उनका बदला बेटा बेटे

सैकड़ों वर्षोंमें भी नहीं चुकासकते। मनुजीने पुत्रोंके धर्म वर्णन करते समय कहा है, कि—पुत्रोंका कल्याण माता पिता की सेवा करनेसे ही होता है, माता पिताके ऊपर भक्ति भाव रखनेवाले पुत्रों के दूसरे धर्म कर्म भी फलीभूत होते हैं। जबतक माता पिता जीते रहैं तब तक पुत्रोंको उनका आदर सत्कार करके प्रसन्न रखना चाहिये, क्योंकि—माता पिता की सेवा करना पुत्रोंका मुख्य धर्महै दूसरे धर्म गौण हैं. माता पिताकी सेवा करनेवालोंमें राम, भीष्म, पुरु, श्रवण, धर्मव्याध, लोपामुद्रा और शर्मिष्ठा आदिके चरित्रोंका प्रत्येक आर्यसन्तानको अनुकरण करनाचाहिये जब केकयीने रामको वनमें जानेकी आज्ञा दी थी उस समय रामने उनसे कहा था, कि—

अहं हि सीतां राज्यञ्च प्राणनिष्टान् धनानि च ।
हृष्टो भ्रात्रे स्वयं दद्यां भरताय प्रचोदितः ॥
किं पुनर्मनुजेन्द्रेण स्वयं पित्रा प्रचोदितः ।
तव च प्रियकामार्थं प्रतिज्ञामनुपालयन् ॥

अर्थात्-तुम आज्ञा दो तो भी मैं सीता, राज्य, अपने प्रिय प्राण और धन ये सब भरतको देसकता हूँ, फिर पर मेरे पिता महाराज दशरथजी आज्ञा दें तो मैं अपनी प्रतिज्ञाको पूर्ण करने और तुम्हे प्रसन्न करनेके लिये सर्वस्व क्यों नहीं दूँगा ? यह कहकर रामचन्द्र जी राज्यतिलकके लिये तयार की हुई सब सामग्रीको त्यागकर तुरन्त वनमें जानेके लिये तयार होगये। पुरुने अपने पिता ययातिको प्रसन्न करनेके लिये अपना यौवन देकर उनको वृद्धावस्था आप ग्रहण करली। श्रवणने अपने अन्धे माता पिताको अडसठ तीर्थोंकी यात्रा कराई। लोपामुद्राने अपने पिताको ऋषिके शापसे बचानेके लिये राजैश्वर्यको त्याग दिया और ऋषिके साथ विवाह करके वनका रहना स्वीकार करलिया। शर्मिष्ठाने अपने पिताके ऊपर शुक्राचार्यकी प्रसन्नता बनी रखनेके लिये जन्मभरको देवयानीका दासीपन स्वीकार किया। पहिले समयमें इसप्रकार अपने बड़ोंकी सेवा कीजाती थी, आजकलके लड़की लड़कोंको चाहिये, कि—प्राचीन कालके पितृभक्तोंके मार्गमें चलकर अपने पुत्रपनेको सार्थक करे।

भ्रातृधर्म—

आजकल जैसे जहां तहाँ भाइयों २ में विरोध देखनेमें आता है, पहिले समयमें ऐसा नहीं था। भरतने अपने बडे भाईके वनमें चले जानेपर उनके पीछे राज्यको लेनेका स्पष्ट निषेध करदिया था, किन्तु रामके प्रतिनिधिरूपसे राज्यको चलाकर प्रजाको प्रसन्न किया था, जब राम वनसे लौटकर आये तब वह राज्य उनको ही सौंपदिया था। लक्ष्मण अपने सब सुखोंको त्यागकर राम और सीता (भाई भावज) की सेवा करनेके लिये वनमें गए थे और उनको मातापिता की समान मानकर बड़ीभारी सेवाकी थी।

आजकल परस्पर लड़नेवाले भाइयोंको भरत और लक्ष्मणका आदर्श सामने रखकर कुटुम्बमें एकता रखनेकी बहुत ही आवश्यकता है, क्योंकि—परस्पर एकता रहनेसे कुटुम्बमें बल बढ़ता है, जिससे कि—जातिमें तथा दूसरे लोगोंमें मान और प्रतिष्ठाकी वृद्धि होती है और इस दशामें जो जीमें आवे वही काम कियाजासकता है।

ब्राह्मण और उनका धर्म—

आजकल हिन्दुओंमें जैसे असंख्यों जातियें हैं, पहिले समयमें ऐसे नहीं थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये चार ही जातियें थी। वेद, धर्मशास्त्र इतिहास, पुराण आदि धार्मिक विद्या और धनुर्वेद अर्थशास्त्र, कृषिशास्त्र, वृक्षायुर्वेद, आयुर्वेद,गणितशास्त्र स्थापत्य वेद तथा कला आदि लौकिक विद्याएं पढ़ानेका और धर्मोपदेश करनेका अधिकार ब्राह्मणको ही दियागया था वे विद्याके अधिकारी बनकर लोगोंको धार्मिक और लौकिक शिक्षा दिया करते थे, उनमें जो उपनयन संस्कार करके छहों अङ्गों सहित वेदोंकी और लौकिक विद्याकी शिक्षा दिया करते थे वे आचार्य कहलाते थे और जो वेदके थोड़े भागकी तथा दूसरी व्यावहारिक विद्याओंकी शिक्षा देकर अपनी आजीविका चलातेथे वे उपाध्याय कहलातेथे तथा जो धनाढ्य गृहस्थों के घर रहकर उनकी ओरसे अग्निहोत्रमें होम करते थे और शान्ति पौष्टिक कर्म कराते थे वे पुरोहित वा ऋत्विज कहलाते थेवे पढ़ाकर, यज्ञ कराकर और और दान लेकर अपना निर्वाह करतेथे कितने ही

ये सदा दूर रहते थे, क्योंकि—ये देशकी और प्रजाकी रक्षा करके राज्यकी व्यवस्था रखना चाहते थे, पहिले राजाको ही समयका कारण मानाजाता था, मनुजीने लिखाहै—

कलिः प्रसुप्तो भवति स जाग्रद्‌ द्वापरं युगम्।
कर्मस्वभ्युद्यतस्त्रेता विचरंस्तु कृतं युगम्॥

राजा जब आलस, अज्ञान और निद्रामें अपने राज्यको चलाता है तब कलियुग वर्त्तता है। जब सावधान होकर राज्य करता है तब द्वापर युग मानाजाता है, जब अपने कर्त्तव्य कर्मको करनेमें तत्पर रहता है तब त्रेता युग गिनाजाता है, और जब हरएक काम को शास्त्रके अनुसार नियमित रीतिसे करता है तब सत्ययुग मानाजाता है।पहिले समय के क्षत्रिय इस बातका विशेष ध्यान रखते थे, जब देशपर कोई अचानक आपत्ति आजाती थी तो सोचने लगते थे, कि हमारे हाथसे कौनसा अन्याय होगया। अपने चरित्रको शुद्ध रखनेमें बहुत ही साव-धानी करते थे। व्यभिचारी, ज्वारी, शराबी और लुटेरोंको बड़भारी दण्ड देते थे, इसकारण ऐसे उपद्रव बहुत ही कम होते थे सच्चरित्र राजा, विद्या, विद्या पाई हुई प्रजा और प्रजाके कलाकौशलसे उन्नति को प्राप्त हुए देशको पहिले गौरवभरे राष्ट्रनामसे पुकारते थे।आजकल वेही क्षत्रिय हैं, उन ही राजाओंके वंशधर हैं, परन्तु उनमेंके अधिक-तर लोग अपढ और आलसी बन राज्यका कार्यभार मंत्रियोंको सौंप-कर अपने अधिकतर समयको मौज उड़ानेमें बितादेते हैं। न तो वे अपनी प्रजासे ही मिलते हैं और न प्रजाकी सभाओंमें आकर प्रजा की क्या इच्छा है, हमारे राज्यमें किस २ बातकी आवश्यकता है इसकी सुधलेते हैं, इसकारण उनके देशका उदय नहीं होता, ये लोग यदि प्राचीन राजाओंकी समान अपने देशके वृद्ध अनुभवी विद्वानोंसे मिलें, उनकी सम्मतिसे देशमें धर्म और कलाओंकी शिक्षा देकर प्रजा को धार्मिक और उद्योगी बनायें तो उनके देशका और साथ २ में उ उदय हो।

श्य और उनका धर्म—

वैश्यजाति है, इस जातिने भी आजकल वैदिक संस्का

को त्यागदिया है और नामके ही वैश्य रहगए हैं, यह जाति भी पहिले अपनी जातिके गौरवको बढ़ानेवाले अर्थशास्त्र कृषिशास्त्र और पशुपालनकी शिक्षा प्राप्त करती और देश परदेशमें व्यापार करती तथा परदेशियोंके साथ व्यापार करनेके लिये उन देशोंकी भाषाओंको सीखती थी, नीतिसे व्यापार करके धन प्राप्त करती और समय पड़नेपर राजा तथा प्रजाकी सहायता करती थी। प्राचीन आर्यजातिके वैश्य दुष्कालके समय देशपर आनेवाली आपत्तिको दूर करनेके लिये अन्नको भूमिमें खत्तियोंमें भर २ कर रखते थे। दोनोंके काम को ध्यानके साथ करते थे, वह देश,ऋतु, भूमि और बीजके दोष गुणोंको समझते थे, दूधवाले और खेतमें काम देनेवाले गौ बैल आदि पशुओंको पालकर देशमें अपने जीवनको सार्थक करते थे, आजकल उस वैश्यजातिके भी अनेकों टुकड़े होगए हैं, उनमें से वैश्यपनेका अभिमान छिन्न भिन्न होजानेसे उनका व्यापार भी गिरगया है, उनके व्यापारको दूसरोंने खसोटलिया है, उस व्यापारको फिर अपने हाथमें लेनेके लिये वैश्योंको परस्पर एकता रखने की बड़ीभारी आवश्यकता है। वैश्य जातिके अधिकतर लोग धनके लालचसे देशके दरिद्र लोगोंकी दुर्दशापर कुछ भी ध्यान नहीं देते हैं यह बड़े दुःखकी बात है, वैश्योंको चाहिये, यथाशक्ति धनकी हानि सहकर भी अपने देशभाइयोंकी सहायता करें मनुजी वैश्यधर्म का वर्णन करतेहुए कहते हैं, कि—

> धर्मेण च द्रव्यवृद्धावातिष्ठेद्यत्नमुत्तमम्।
> दद्याच्च सर्वभूतानामन्नमेव प्रयत्नतः॥

अर्थात्–वैश्यजातिको चाहिये, कि—धर्मको आगे रखकर व्यापार करे, धन पानेके लिये नीतिके साथ उद्योग करे और सब प्राणियोंको अन्न देय।

शूद्र और उसके धर्म—

शूद्र चौथी जाति गिनीजाती है, पहिले शूद्र शिल्प और सेवासे अपनी आजीविका करते थे परन्तु वैदिक धर्मकी अवनतिके साथ २ सबोंने धनके लालच से अपने २ कर्त्तव्यको छोड़दिया इच्छानुसार जीवननिर्वाह करनेलगे, ऐसे ही अवसरमें शूद्र जाति भी अपनी

वंशपरम्परा के कामको छोड़कर दूसरा ही धंधा करनेलगी ऐसा होनेसे आर्यजातिको व्यवहारके विषयमें बड़ीभारी हानि पहुँची है, ऐसा होनेका कारण केवल झूठी लालसा और अपने कर्त्तव्यपालन की उपेक्षा करना है। हरएककी अवनति उसके अपने प्रमाद और अव्यवस्थासे होती है, इसका अनुभव भारतवर्षकी प्रजाको पूर्णरीति से हुआ है। ब्राह्मण विद्या और चरित्र (धर्मपरम्परा) से भ्रष्टहोकर अनेकों मार्गोंमें बँटगए जिससे कि—धर्मराज्य और मानप्रतिष्ठाको खोबैठे। क्षत्रिय विषयासक्त होकर अपने क्षात्रधर्मको भूलगए जिस से कि—उनकी भूमि हाथसे निकलगई। वैश्य भी अपने वैश्य धर्म को छोड़कर असत्यसे व्यापार करनेलगे और अपनी जातिके अनेकों टुकडे करलिये तब इनका व्यापार भी इनके हाथसे निकल गया। शूद्र भी अपने बाप दादोंके समयसे चले आतेहुए कारीगरीके धन्धे को छोड़कर दूसरेही कामोंमें सिरपिच्ची करनेलगे,इसकारण वे अपने धंधेको ही भूलगए, इसप्रकार सब ही एक दूसरेके धंधों पर हाथ चलानेलगे इस प्रकार भारतवर्षकी प्रजा अपने देशकेउज्वल साहित्य को तथा शिल्पकलाको अपने हाथसे खोबैठी और इसीकारण दुर्बल दशा आपड़नेसे उनके स्वार्थमय जीवनमें जो एकता वह रही थी वह रुकगई, तब चातुर्वर्ण्यकी प्रजाकी एकतारूपी जंजीरकी कड़ियें टूटगईं और देश अधोगतिमें आपड़ा, अब भी यदि चारों वर्णोंके आर्यवंशधर अपने पुरातन पेशे और शिक्षाका सहारा लें तो शीघ्र ही आर्यजातिका उदय होजाय शास्त्र कहता है कि—

संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपि।

अर्थात्—अपनी जाति और कुलके छोटे २ पुरुष भी मिलकर रहैं तो अवश्य ही कल्याण होता है।　　　　(शेषफिर)

—०—

श्राद्धरहस्य।

(गताङ्कसे आगे)

शाली आदि धान्य वर्षामें उत्पन्न होकर शरदऋतुमें पकजाते हैं श्यामाक और चरदर आदि वर्षा में उगकर शरद् में बढ़ते हैं और हेमन्त ऋतु में पकते हैं। जो धान्य आदि शरद् में उत्पन्न होकर हेमन्तमें बढ़ते

हैं और वसन्तमें पकते हैं, इसप्रकार सबही वनस्पति अपने अनुकूल ऋतुमें उत्पन्न होकर विरुद्ध ऋतुमें नष्ट होजाते हैं। फलोंमें देखाजाय तो बेर सीताफल आदि शरद् हेमन्तकी सन्धिमें और आम जामन आदि ग्रीष्मवर्षाकी सन्धिमें अच्छे होते हैं। फलोंकी उत्पत्ति कभी २ ऋतुके विरुद्ध भी होती है परन्तु उसके स्वाद में अन्तर होजाता है, इन सब कारणोंसे तथा मनुष्यके शरीरमें वर्षाऋतुमें पित्तकासञ्चय शरद् में प्रकोप और हेमन्तमें शान्ति होती है। कफकी हेमन्तमें उत्पत्ति, वसन्तमें प्रकोप और ग्रीष्ममें शान्ति होती है तथा वायुका ग्रीष्ममें उपचय, वर्षामें प्रकोप और शरद्में शान्ति देखनेमें आती है यही आयुर्वेदका मत है, यद्यपि ऋतुओं को हम आंखों से नहीं देखसकते हैं तथापि उनका संसारके साथ नित्य सम्बन्ध सिद्ध है। जिससे सबकी उत्पत्ति, अवस्थाका बदलना और नाश होता है तथा अनुकूल काल सुखका अनुभव कराने में और प्रतिकूल काल(दुष्काल)दुःखका अनुभव करानेमें हेतुरूप होता है, उस कालका स्वरूप प्रत्यक्ष न होने पर भी हमारे साथ उसका अटल सम्बन्ध है, वर्षा होने पर, पृथ्वीमें पहिलेसे छिपा या बोयेहुए बीज सूर्यका उदय होने पर खिलते हैं और सूर्यास्त होने पर कुम्हलाजाते हैं। कमलके फूल सूर्यका उदय होनेपर खिलते हैं और अस्त होनेपर कुम्हलाजाते हैं। सूरजमुखीका फूल सूर्योदयके समय पूर्वमुख, मध्याह्नमें ऊर्ध्वमुख और सूर्यास्तके समय पश्चिममुख होताहै, ऐसे २ अनेकों कारणोंसे तथा सबके व्यवहार सूर्यके साथरखे होते हैं इसलिये भूलोकके सब प्राणियोंका सूर्यके साथ संबन्ध है। कितने ही वनस्पति और कमल चन्द्रमाके उदयसे विकसित होते हैं और चन्द्रमाके छिपने पर संकुचित होजाते हैं। सब धान्य और फलोंमें अपनी अमृतभरी शीतल किरणोंसे मिष्टताका सिंचन करनेमें चन्द्रमा हेतुरूप माना जाता है तथा जिसके उदयसे नेत्र और हृदयको आनन्द प्राप्त होता है एवं शरद् और ग्रीष्म ऋतुमें जिसका प्रकाश प्यारा मालूम होता है ऐसे चन्द्रमाका भी भूलोकके साथ आवश्यक संबन्ध है कितनी ही वनस्पति शुक्लपक्षमें उदय होने पर बढ़ती हैं और अस्त होनेपर सूखजाती हैं, इस की साधारण परीक्षा यह है, कि—जिस वनस्पतिको जिस नक्षत्रके

साथ संबन्ध होगा उसके उदयकालमें उसकी कोई भी टहनी तोड़
जाय तो उसमेंसे दूध या किसीप्रकारका रस टपकेगा, परन्तु उस
ही नक्षत्रके अस्तकालमें समूचे पौधेको तोडडालो तो भी उसमें
दूध या रस नहीं टपकेगा। तथा गेहूँ सूर्यकी, धान चन्द्रमाकी, अरहर
मङ्गलकी, जौ बुधकी, चने बृहस्पतिकी, मूँग शुक्रकी; तिल शनिकी
और उड़द राहुकी, किरणोंसे पुष्ट होकर पकते हैं ऐसा ज्योतिष
शास्त्रका या भारतीय पदार्थविद्याका सिद्धान्त है इसकारण तथा
उच्चराशिमें आनेसे सुखका अनुभव और नीचराशिमें आनेसे दुःख
का अनुभव होता है। एवं शुक्रके अस्त, बृहस्पतिके उदय, मङ्गलके
चल और शनिके अस्त उदय एवं चलित होनेसे वर्षाका संभव माना
जाता है, इससे सिद्ध होता है, कि—आकाशमें स्थित ग्रहोंके साथ
भी इस पृथ्वीका सम्बन्ध है। वृष्टिके विषयमें आर्द्रादि नक्षत्र,
मोतीकी उत्पत्तिके लिये स्वाती नक्षत्र तथा वर्षाके होने न होनेमें
अगस्त्यके तारेका अस्तोदय उपयोगी मानाजाता है शास्त्रमें यह भी
लिखा है, कि—इन्द्र प्रजापति आदि देवता यज्ञ आदिसे प्रसन्न हो
कर श्रेष्ठवर्षाके द्वारा जगत्‌को सुख देते हैं, इसकारण उनके साथ
भी भूलोकका सम्बन्ध है। इसी प्रकार मरण होनेके अनंतर मरने
वाला किसकर्मके अनुसार किस योनिमें गया है, किस देशमें और
किस जातिमें गया है तथा उसके तन मनकी क्या दशा है अथवा
वलका नाम लेकर उसके वंशके पुरुषोंने क्या कर्म किया है इत्यादि
बातोंको देखभाल रखनेवाले वसु रुद्र आदित्य पितृ देवता हैं और वे
वसु-रुद्र-आदित्यस्वरूप पितृदेव, मृतपितरोंके वंशधरोंके किये
श्राद्धमें, तीन पिण्डोंके प्रतिनिधिरूपसे बैठाले हुए ब्राह्मणोंमें अथवा
कुशब्राह्मणों में—

ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि।
उशन्नुशत आवह पितॄन् हविषे अत्तवे॥

इस मंत्रको पढ़कर आवाहन करने पर वे तुरन्त ही श्राद्धस्थानमें
आकर उपस्थित होते हैं तथा उस श्राद्धकर्ममें अग्निमें होमे हुए
पदार्थोंका अथवा ब्राह्मणोंको भोजन करनेके लिये परोसे हुए अन्न

भोज्य आदि पदार्थोंके सार अंशको वासना से ग्रहण करके श्राद्ध करनेवालेके ऊपर प्रसन्न होतेहुए आशीर्वाद देकर अन्तमें पढ़े जानेवाले विसर्जनके मंत्रोंसे विसर्जित होकर श्राद्ध करनेवालेके मृत पितरोंको यथायोग्य सुखका भागी करते हैं तथा श्राद्ध करनेवाले को आयु, प्रजा, धन, विद्या, स्वर्ग और मोक्षसुख देते हैं, उन पितृदेवोंका भी हमारे इस भूलोकके साथ संबन्ध है । इन पितृदेवोंका दर्शन साधारण पुरुष अपने चर्मचक्षुओंसे नहीं करसकते, तथापि शास्त्रज्ञ पुरुषोंकी दृष्टिमें पितरोंका प्रत्यक्ष आवाहन असम्भव नहीं मानाजाता है। यह विषय योगशास्त्रमें स्पष्ट है । योगिराज महर्षि पतञ्जलि भगवान्‌ने अपने योगदर्शनके विभूतिपादमें कहाहै, कि—

परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ।

धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम और अवस्थापरिणाममें संयमकरनेसे योगीको अतीत और अनागत का ज्ञान होताहै ।

प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ।

चित्तकीवृत्तिके संयमसे, दूसरेके चित्तका साक्षात्कार (परचित्त ज्ञान) होताहै ।

कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुःप्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम् ।

अपने शरीरके रूपमें संयम करनेसे, उसके द्वारा दूसरेकी ग्रहण करने योग्य शक्तिकी रुकावट होजाने पर वह रूप दूसरेके नेत्रोंको नहीं दीखसकता तब योगी अन्तर्धान होताहै ।

संयमसिद्ध योगीको भूत भविष्यत् का ज्ञान होजाताहै, वह दूसरे के चित्तकी बातको जानलेता है तथा कायसंयम होजाने पर वह योगी अन्तर्धान रहकर भी बहुतसे व्यवहार करसकता है और जिसको दिव्यदृष्टिकी सिद्धि होजाती है ऐसे योगी सब विश्वको हाथमें रक्खेहुए आँवलेके फलकी समान देखसकते हैं । भगवान् शङ्कराचार्यने मण्डनमिश्रको जीतने के लिये अमरक राजाके शरीरमें प्रवेश करके श्रीमती भारतीके साथ शास्त्रार्थ किया था। तो जब पुरुषोंमें ऐसी शक्ति होसकती है तब "पितॄणामर्यमाचास्मि" भगवान्

श्रीकृष्णके इस वचनसे सिद्ध ईश्वररूप पितृदेवोंमें ऐसी सामर्थ्य का होना कोई असम्भव बात नहीं है, इसप्रकार उच्चकोटिकी देवजातिवाले ये पितृदेव अपने योगबलसे श्राद्धस्थानमें आनेकी शक्ति रखते हैं, इसकारण वे निमन्त्रित ब्राह्मणोंके शरीरोंमें वायुरूपसे प्रवेश करके उपस्थित रहते हैं यही भाव मनुजीने दिखाया है—

निमन्त्रितान् हि पितर उपतिष्ठन्ति तान् द्विजान् ।
वायुवच्चानुगच्छन्ति तथासीनमुपासते ॥ मनु ३ अ०

अर्थात् श्राद्ध करने वाला जिस समयसे जिन ब्राह्मणोंको निमन्त्रण देता है तब ही से पितर उसके शरीरमें अदृश्यरूपसे रहते हैं और प्राणवायुकी समान उन ब्राह्मणोंके गमन करने पर उनके साथ जाते हैं तथा उनके बैठनेपर समीपमें स्थित होजाते हैं ।

जिनका अन्तःकरण रजोगुण और तमोगुणकी प्रधानतासे छूटकर शुद्ध सत्त्वप्रधान होगया है अथवा जिनके अन्तःकरणमें योगजनित संस्कार का प्रकाश होगया है ऐसे शुद्ध अन्तःकरणवाले स्त्री पुरुषोंको, ब्राह्मणोंके शरीरोंमें प्रविष्ट होकर पितरोंके समय पर श्राद्धभूमिमें उपस्थित हुए पितरोंका दर्शन होता है उन विशुद्ध अन्तःकरण वाले मनुष्योंको पितरोंका दर्शन किस स्वरूपमें होता होगा, इस संदेह को दूर करनेके लिये हमें इतना कहना है, कि—उन निर्मल मनवाले मनुष्योंके वर्त्तमान जन्मके जो संबंधी मरणको प्राप्त हुए हों, उनके शरीरकी आकृति, रूप, गुण अवस्था, लावण्य और स्वभाव आदि जो २ बातें देखनेमें या अनुभवमें आई होंगी, उन सबका संस्कार उनकी मृत्यु होजाने पर भी, उनके साथ एकत्रनिवास आदि अधिक परिचयके कारण उन मनुष्योंके अन्तःकरणमें बसा रहता है, वे ही संस्कार उनके शुद्ध अंतःकरणकी उत्कर्षताके कारण स्मृतिरूपसे प्रकट होकर पादरश्राद्धमें निमंत्रित ब्राह्मणोंके स्वरूपमें प्रत्यक्ष प्रतीत होने लगते हैं । ऐसे दर्शनीय मनुष्य जब श्राद्ध करते समय निमंत्रित ब्राह्मणोंका पितृभावनासे सब अर्घ पाद्य और गन्ध पुष्प आदिसे पूजन करते हैं उस समय न विक्षेपके दूर होजानेसे विशुद्ध मनोबलके कारण उनकी दृष्टि

से उन ब्राह्मणोंके स्वरूपका अन्तर्धान होकर, जिन सम्बन्धियोंके लिये श्राद्ध किया जाता है उन पिता पितामह आदि मृतसंबंधियोंके स्वरूपका ब्राह्मणोंकी मूर्तियोंमें आविर्भाव हुआ दीखता है और ब्राह्मणोंको भोजन करने समयमें यह श्राद्धकर्ता अपने संबंधियोंको भोजन करताहुआ देखता है तथा वे श्राद्ध आदि क्रियासे सन्तुष्ट होकर मुझे वरदान, आशीर्वाद और व्यवहार परमार्थके ज्ञानका उपदेश देरहे हैं ऐसा देखता है। यह सब बात उन मनुष्योंके अन्तःकरणके ऊंचे अधिकार का ही परिणाम समझना चाहिये। आज कलके रजोगुण तमोगुणसे ढके हुए, संसारमें आसक्त मलिन अन्तःकरण वाले मनुष्योंको ऐसा लाभ प्राप्त होना सहज नहीं है। इसप्रकार पितरोंका कदाचित् कोई शुद्ध अन्तःकरणवाले पुरुष पूजन करते हों और उनको अपने उत्तम मनोबलके कारण पूजित ब्राह्मणोंके शरीरोंमें अपने मृत संबंधियोंके दर्शन होते हों और उसी समय उस श्राद्धके स्थानमें कोई मलिन अन्तःकरणवाला मनुष्य आजाय तो उसको उनका दर्शन नहीं होताहै, क्योंकि—उनका लौकिक विषयोंमें आसक्त मलिन दृष्टि और पितृभक्त श्राद्धकर्त्ताकी दिव्य विमल दृष्टिमें बड़ाभारी अन्तर है। व्यवहारमें भी देखा जाय तो पदार्थोंको देखनेकी शक्ति सबोंकी एकसमान नहीं होती। द्वितीयाके चन्द्रमाको कोई सहजमें देखसकता है और कोई वृक्षकी टहनी अथवा अंगुलीके अग्रभाग आदिके सङ्केतसे बताने पर भी नहीं देखसकता। अच्छी दृष्टिवाला दिनमें देखता है और अन्धा नहीं देखसकता। आंखके अच्छे तेजवाला कुछ एक अंधेरेवाली रात्रिमें भी देखसकता है, रतौंधेवाला अंधेरी तो क्या उजियाली रात्रिमें भी नहीं देखसकता। सब प्राणी दिनमें देखते हैं परन्तु उल्लूको दिनमें नहीं दीखता, ऐसे ही दैवी चमत्कार, देवता, सिद्ध और ईश्वर कोटिकी लीलाविग्रह मूर्तियोंका दर्शन भी मन्दभागी मलिनबुद्धि वाले पामरोंकी दृष्टिसे कदापि नहीं होसकता, ऐसे श्रेष्ठ लाभके अधिकारी तो दिव्यदृष्टिवाले सौभाग्यवान् मनुष्य ही होते हैं श्रीकृष्णपरमात्माने अपने [illegible] अर्जुन को दिव्य नेत्र दिये उनके युद्धभूमिमें अर्जुन को भगवान्के विराट्स्वरूपके दर्शन

होने पर भी उस दृष्टिके न होनेसे युधिष्ठिर आदि अन्य पाण्डवोंको तथा कौरव आदिकोंको उस विराटस्वरूपके दर्शन नहीं हुए । ध्यान-गम्य चमत्कारोंको ध्यान करनेवाला ही देखसकता है दूसरा नहीं देखसकता।इसीप्रकार श्राद्ध भूमिमें विद्यमान होने पर भी पितरों का दर्शन निर्मल मनवाले पितृभक्तोंको ही होसकता है, दूसरों को नहीं होसकता पुष्करवापीके समीपमें धर्ममूर्ति श्रीरामचन्द्रजीने पिताकी तिथिके दिन जब श्राद्ध किया उस समय महामाया श्रीजानकीजीको निमन्त्रित ब्राह्मणके शरीरमें महाराज दशरथजीका दर्शन हुआ था, जिससे कि-मुझ पुत्रवधूसे धर्ममर्यादा का उल्लंघन न होजाय इस भयसे जानकी उससमय लज्जित हो उठाकर अन्यत्र चलीगई थीं यह कथा पुराणोंमें प्रसिद्ध है और भी कितने ही विशुद्ध बुद्धिवाले पुरुषोंको श्राद्धभूमिमें अपने मृत पूर्वपुरुषोंके दर्शन हुए हैं जैसे कि—लिखा है।

भीष्मो विष्णुपदे श्रेष्ठे आहूय च स्वकान् पितॄन् ।
श्राद्धं कृत्वा विधानेन पिण्डदानाय चोद्यतः ॥
पितुर्विनिर्गतौ हस्तौ गयाशिरसि शन्तनोः ।
भीष्मःपिण्डं ददौ भूमौ नाधिकारः करे यतः ॥
शन्तनुः प्राह सन्तुष्टः शास्त्रार्थे निश्चयोऽस्तु ते ।
त्रिकालदृष्टिर्भवतु चान्ते विष्णुश्च ते गतिः ॥
स्वेच्छया मरणं चास्तु इत्युक्त्वा मुक्तिमागतः ।
रामो रुद्रपदे श्राद्धे पिण्डदानाय चोद्यतः ।
पिता दशरथः स्वर्गात्प्रसार्य करमागतः ॥
नादात्पिण्डं करे रामो ददौ रुद्रपदे ततः ।
शास्त्रार्थातिक्रमाद्भीतं रामं दशरथोऽब्रवीत् ॥
तारितोऽहं त्वया पुत्र रुद्रलोकमवाप्नुयाम् ।
पिण्डप्रदानाद्धस्ते तु स्वर्गं तु महतां नहि ॥
त्वं च राज्यं चिरं कृत्वा पालयित्वा द्विजान् प्रजाः ।
यज्ञान् सदक्षिणान्कृत्वा विष्णुलोकं गमिष्यसि ॥

सहायोध्याजनैः सर्वैः कृमिकीटादिभिः सह ।
इत्युक्त्वाऽसौ दशरथो रुद्रलोकं परं ययौ ॥

विष्णुपद नामक उत्तम तीर्थमें अपने पितरोंका आवाहन करके भीष्मपितामह श्राद्ध करते समय पिण्डदान करने लगे, तब उस गयशिर तीर्थमें उनके पिता राजा शन्तनुके दो हाथ निकले हाथमें पिण्डदान करनेको विधि तथा अधिकार नहीं है इसकारण भीष्म पितामहने भूमि पर पिण्डदान किया, इससे सन्तुष्ट हुए राजा शन्तनुने कहा कि—तेरा शास्त्रके अर्थपर विश्वास हो, तुझे त्रिकाल दृष्टि प्राप्त हो, श्री भगवान् तुझे सद्गति दें और तुझे अपनी इच्छानुसार मरणकी शक्ति प्राप्त हो, ऐसा कहकर राजा शन्तनु मुक्तिको प्राप्त हुए। श्री रामचन्द्रजी रुद्रपद नामक तीर्थमें पिण्डदानको उद्योग करने लगे, उस समय उस रुद्रपद भूमिमें स्वर्गसे राजा आये तब रामचन्द्रजीने भी शास्त्र की आज्ञाको उल्लंघन होनेके भय से उन हाथोंमें पिण्डदान न करके भूमिमें ही किया। तब महाराज दशरथ प्रसन्न होकर कहनेलगे, कि-हे पुत्र! तूने मुझे, तारदिया मैंने अब रुद्रलोक पालिया, हाथमें पिण्डदान देनेसे महापुरुषोंको भी स्वर्ग नहीं मिलता है, तुम द्विज आदि प्रजाका पालन करतेहुए, चिरकाल राज्य करके बहुतसी दक्षिणावाले यज्ञ करके अन्तमें कृमिकीट आदि प्राणी और सकल अयोध्यावासियों सहित स्वर्ग लोकमें आओगे, ऐसा कहकर राजा दशरथ रुद्रलोकको चलेगए। इसप्रकार सुननेमें आताहै, कि—श्रीरामचन्द्रजीको अपने पिता महाराज दशरथका और भीष्मपितामहको राजा शन्तनुका दर्शन तीर्थश्राद्ध करनेमें हुआ था (शेषफिर)

—o—

वन-विहङ्गम।

(लेखक—श्रीयुत रूपनारायण पाण्डेय)

वन—बीच बसे थे, फँसे थे ममत्व में, एक कपोत कपोती कहीं।
दिन—रात न एक को दूसरा छोड़ता, ऐसे हिले मिले दोनों वहीं॥
बढ़ने लगा नित्य नया नया नेह, नई नई कामना होती रहीं।
कहने का प्रयोजन है इतना, उनके सुख की रही सीमा नहीं॥ १॥

रहता था कबूतर मुग्ध सदा, अनुराग के राग में मस्त हुआ।
करती थी कपोती कभी यदि मान, मनाता था पास जा व्यस्त हुआ॥
जब, जो कुछ चाहा कबूतरी ने, उतना वह वैसे समस्त हुआ।
इस भाँति परस्पर पक्षियों में भी, प्रतीति से प्रेम प्रशस्त हुआ॥ २॥
सुविशाल वनों में उड़े फिरते, अवलोकते प्राकृत चित्र—छटा।
कहीं शस्य से श्यामल खेत खड़े, जिन्हें देख घटा का भी मान घटा॥
कहीं कोसों उजाड़ में झाड़ पड़े, कहीं झाड़ में कोई पहाड़ सटा।
कहीं कुञ्ज, लता के वितान तने, सब फूलों का सौरभ था सिमटा॥३॥
झरने—झरने की कहीं झनकार, फुहार का हार विचित्र ही था।
हरियाली निराली, न माली लगा, फिर भी सब ढंग पवित्र ही था॥
ऋषियों का तपोवन था सुरभी का जहाँ पर सिंह भी मित्र ही था।
बस, जान लो, सात्त्विक सुन्दरता, सुखसंयुत शान्ति का चित्र ही था॥४
कहीं झील—किनारे बड़े बड़े भव्य गृहस्थ निवास बने हुए थे।
खपरैलों में कद्दू करेलों की बेल, के सूत्र तनाव तने हुए थे॥
जल शीतल, अन्न जहाँ पर पाकर, पक्षी घरों में घने हुए थे।
सब ओर स्वदेश-स्वजाति-समाज—भलाई के ठान ठने हुए थे॥ ५॥
इस भाँति निहारते लोक की लीला, प्रसन्न वे पक्षी फिरे घर को।
उन्हें देखते दूर ही से, मुख खोल के बच्चे चलें घर बाहर को॥
दुलराने, खिलाने—पिलाने से था, अवकाश उन्हें न घड़ी भर को।
कुछ ध्यान ही था न कबूतर को, कहीं काल चढ़ा रहा है सर को॥६॥
दिन एक बड़ा ही मनोहर था, छवि छाई वसन्त की कानन में।
सब ओर प्रसन्नता देख पड़ी, जड़ चेतन के तन में, मन में॥
निकले थे कपोत—कपोती कहीं, पड़े झुंड में घूम रहे वन में।
पहुँचा यहाँ घोसले पास शिकारी, शिकार की ताक में निर्जन में॥७॥
उस निर्दय ने उसी पेड़ के पास, बिछा दिया जाल को कौशल से।
वहाँ देख के अन्न के दाने पड़े, चले बच्चे, अभिज्ञ जो थे छल से।
नहीं जानते थे, कि यहीं पर है कहीं, दुष्ट छिपा पड़ा भूतल से।
बस, फाँस के फाँस के बन्धन में, कर देगा हलाल हमें बल से॥८॥
जब बच्चे फँसे उस जाल में जा, तब वे घबड़ा उठे बन्धन में।

इतने में कबूतरी आई वहाँ दशा देख के व्याकुल हो मन में—
कहने लगी, हाय हुआ यह क्या ! तुम मेरे हलाल हुए वन में ।
अब जाल में जाके गिरूँ इनसे, चुप हो क्या रहा इस जीवन में ॥९॥
उस जाल में जाके बहेलिये के, ममता से कबूतरी आप गिरी ।
इतने में कपोत भी आया वहाँ, उस घोसले में थी विपत्ति निरी ॥
ताकते ही, अँधेरा-सा आगे हुआ, घटना की घटा यह घोर घिरी ।
नयनों से अचानक बूँद गिरे, चेहरे पर शोक की स्याही फिरी ॥१०॥
तब दीन कपोत बड़े दुख से कहने लगा—'हा ! अति कष्ट हुआ !
निबलों ही को दैव भी मारता है, ये प्रवाद यहाँ पर स्पष्ट हुआ ॥
सब सूना किया, चली छोड़ प्रिया, सब ही विधि जीवन नष्ट हुआ ।
इस भाँति अभागा अतृप्त ही, मैं, सुख भोग के स्वर्ग से भ्रष्ट हुआ ११
कलि-कूजन-केलि कलोल में लिप्त हो, बच्चे मुझे जो सुखी करते ।
जब देखते दूर से आता मुझे, किलकारियाँ मोद से जो भरते ॥
समुदाय के, चाव से, आयके पास, उठायके पंख नहीं टरते ।
यहाः हाय ! हुए असहाय, अहो ! इस नीच के हाथ से हैं मरते ॥१२॥
गृह-लक्ष्मी नहीं, जो जगाए रहा करती थी सदा सुख-कल्पना को ।
शिशु भी तो नहीं, जो उन्हींके लिये सहता इस दारुण वेदना को ॥
यह सामने ही परिवार पड़ा पड़ा भोग रहा यमयातना को ।
अब मैं ही वृथा इस जीवन को रख, कैसे सहूँगा विडम्बना को !" १३
यहाँ सोचता था यों कपोत वहाँ, चिड़ीमार ने मार निशाना लिया ।
गिर, लोट गया धरती पर पक्षी, बहेलिये ने मनमाना किया ॥
पल में कुल का कुल काल कराल ने 'भूत-भविष्य' में भेज दिया ।
क्षणभंगुर जीवन की गति का यह एक निदर्शन है बढ़िया ॥ १४ ॥
हरएक मनुष्य फँसा जो ममत्वमें, सत्य-महत्व को भूलता है ।
उसके सिर प खुला खड्ग सदा, बँधा धागे में धार से झूलता है ॥
वह जाने बिना विधि की गति को, अपनी ही गढ़न्त में फूलता है ।
पर अन्त को ऐसे अचानक अन्तक शूल अवश्य ही हूलता है ॥ १५ ॥
पर, जो जन भोग के साथ ही योग के काम पवित्र किया करता ।
परिवार से प्यार भी पूर्ण रखे, पर-पीर परन्तु सदा हरता ॥
निज भाव न भूल के, भावी न भूल के, विघ्नव्यथा को नहीं डरता ।

कृतकृत्य हुआ हँसते हँसते, वह सोच सँकोच बिना मरता ॥ १७ ॥
प्रिय पाठक ! आप तो विज्ञ ही हैं, फिर आपको क्या उपदेश करें ?
शिर पै शर ताने वहेलिया काल खड़ा हुआ है, यह ध्यान धरें ॥
दया भक्त को दोनी कपोत की देखो, परन्तु न आप जरा भी डरें ।
निज धर्मके कर्म सदैव करें, कुछ चिन्ह यहाँ पर छोड़ मरें ॥ १८ ॥
(प्रभा से उद्धृत.)

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

सनातनधर्मपताका

गोकानुद्धरयन् श्रुतीर्मुखरयन् क्षोणीरुहान् हर्षयन् । शैलान् विद्रवयन् मृगान् विवशयन् गोवृन्दमानन्दयन् । गोपान् सम्भ्रमयन् मुनीन् मुकुलयन् सप्तस्वरान् जृम्भयन्नोङ्कारार्थमुदीरयन् विजयते वंशीनिनादः शिशोः ॥ * ॥

भुवि कलिकालगुणोपहृतज्ञानुद्भ्रमतो विविधोधितमार्गान् ।
धर्म्यवचोविनिवेदनशीला जयति सनातनधर्मपताका ॥

वर्ष १४] मुरादाबाद माघ सम्वत् १९७० [संख्या ११

प्रार्थना

अखिलभुवनवन्धो प्रेमसिन्धो जनेऽस्मिन्,
सकलकपटपूर्णे ज्ञानहीने प्रपन्ने ।
तव चरणसरोजे देहि दास्यं प्रभो त्वं,
पतिततरणनाम प्रादुरासीद्यतस्ते ॥

अन्वय और पदार्थ

(अखिलभुवनवन्धो) हे सकल भुवनोंके बन्धु! (प्रेमसिन्धो) हे दयासिन्धो (प्रभो) हे नाथ (सकलकपटपूर्णे) सब प्रकारके कपट से भरे (ज्ञानहीने) अबोध (अस्मिन् जने) इस दासके जनके (प्रपन्ने) शरणमें आने पर (त्वम्) तुम (तव चरणसरोजे) अपने चरणकमलोंमें (दास्यम्) दासभावको (देहि) दीजिये (यतः)

क्योंकि (ते) तुम्हारा (पतिततरणनाम) पतितोंको तरनेवाला नाम (प्रादुः आसीत्) प्रसिद्ध होचुका है ॥

(भावार्थ)—हे निखिलभुवनपते ! हे प्रेमसागर ! तुम अपने स्वभावसे दया करके मेरे हृदयमेंसे कपटमय खोटे विचारोंको दूरकरके अपना सेवक बना लो, मैं आपके अमलकमलसमान लाल चरणोंकी सेवाका अधिकार पाकर आपके पतितोद्धारण नामकी जयघोषणा करूँगा, हे दयामय ! मैं सर्वथा भावभक्तिसे हीन हूँ आप अपने गुणसे मेरे ऊपर दया करिये । हे प्रभो! आप मङ्गलमय हैं, जीव जिससे, किसदा सुख शान्ति पाकर प्राणोंकी परमपीड़ाको भूलजावे, इसके लिये आप अनेकों प्रकारकी कृपा करतेहैं । परन्तु मोहसे अन्धा बना हुआ जीव आपके इस अनन्त लीलामय भावको न समझकर आपसे सच्चा प्रेम नहीं करसकता और न आपको आत्मसमर्पण ही करसकताहै इसकारण ही रात दिन अनेकों असह्य पीड़ाओंको भोगता है । हे दयामय! जिसने एकवार आपके सर्वव्यापकपने के भाव का सच्चा पता पालिया है, उसको फिर कुछ भी कमी नहीं रही है, वह उसी समय आनन्दमें भर कर जोरके साथ कहनेलगताहै कि-"हे दयालु श्रीहरे! एक तुम ही मेरे हृदयके धनहो, अपना प्राण मन आपको सर्पण करके मैं आपका ही होगया हूँ । हे प्रभो ! जीव और जगत् संसार सब आपका ही है, तुमही स्रष्टा हो, तुमही पालनकर्त्ता हो । संसारके प्रपञ्चमें फँसे हुए मूर्ख मायाबद्ध जीव नासमझीसे न करनेके काम करतेहैं, न विचारनेकी बातें विचारते हैं और जिस वस्तुके प्राप्त करनेकी आवश्यकता नहीं है उसको पानेके लिये व्याकुल रहते हैं, तुम दयामय हो, तुम्हारी दयामें कुछ सङ्कोच नहीं है, तुम जीवों के दुःखसे कातर होकर न जाने कितने प्रकारसे उनके दुःखोंको दूर करनेका उद्योग करते हो.

ध्यान देनेसे ही आपकी इस अतुल अनूपम दया का परिचय ..., परन्तु कैसा दुर्दैव है ! कैसा मोह है ! कि—आपकी और आपके कौशलका हमें कुछ पता ही नहीं है और हम पता पानेका कुछ उद्योग ही करते हैं । अभिमानमें ऐसे चूर होरहे हैं, कि—आप हमारे जीवनकी सजीवन बूंटीरूप और अद्वितीय प्राणवल्लभ हैं इस रहस्यको नहीं समझते, इसकारण ही पग पग पर

विपत्ति में पड़कर हाय हाय किया करते हैं। जिस समय अभिमान में भरेहुए किसी कार्यको सहज समझकर करना चाहतेहैं, वही काम हमारे लिये कठिनहोजाताहै और जिस काम को कठिन जान हताश होकर छोड़ बैठते हैं, उसको ही आपकी कृपाशक्ति अनेकों भावसे अनेकों मूर्त्तियोंमें आकर अतिसहज करके हमारे ऊपर आपके अकृत्रिम प्रेमका परिचय देती है इसप्रकार ऐसी न जाने कितनी घटनायें होचुकीहैं उनकी गणना नहीं होसकती, हाय हाय तो भी आपमें निष्कपट विश्वास नहीं जमता।

हे दयामय! इस जीवनमें मुझे जिन घटनाओंके होनेका स्वप्न में भी मान नहीं था वे भी होगईं परन्तु मेरा दुर्जय अभिमान दूर नहीं हुआ, सदा अभिमान से छाती फुलाकर चला, आपके निर्भय चरणों में एकबार भी शिर नहीं झुकाया। एक २ दिन करके जीवन के शेष दिन भी व्यतीत होचले, परन्तु इस दुर्लभ जीवन का कर्त्तव्य तो मैं कुछभी नहीं करसका, केवल पशुकी समान आहार विहार में ही मग्न रहा। हे प्रेममय! इसप्रकार वृथा धक्के खातेहुए और कबतक बीतेगी? हे दीनबन्धो! विचारमयी दृष्टि देकर अपना अनन्यभाव दिखा कर तथा समझाकर मुझे अपनी भक्तिका पागल बनालीजिये, अपने मङ्गल मय नामका मधुर स्वाद चखाकर मेरे सकल अभाव और सकल अमङ्गलों को दूर करिये। दयामय! दया करिये।

सनातन धर्म्म सभा पटना

१४ फरवरीके बिहारबन्धुसे उद्धृत

गत तथा इस सप्ताह में पटना नगर में धर्म की धपार बड़ेवेग से बहती रही। गत सप्ताह में दानापुर की सनातनधर्म्मसभा का वार्षिकोत्सव बहुत समारोह से तीनो दिनों तक मनाया गया। उसके पीछे गत ७, ८, ६, १० तारीखों को पटना चौक स्थान की श्रीसनातनधर्म्म सभा का नवां वार्षिक अधिवेशन बहुत ही भारी जोश से बहुत ही उत्तमता से, हुआ चारों दिन नित्य कमसे कम ६००० मनुष्य इस धर्मकार्य्य में भाग लेते थे। एक साथ इतने धर्मानुरागी को सम्मिलित देखकर नयन चकित हो जाते थे। बड़े से बड़े रईसलोग

तथा साधारण मनुष्यों का आग्रह इतना दर्शनीय था कि देखनेवाले के मनमें अकस्मात् यही प्रश्न उठता था कि हिन्दू जाति मरी नहीं है-हिन्दू जाति में यदि और कामों में ढीलापन सांसारिक आकाङ्क्षाओं की पूर्त्ति में शिथिलता—पायी जाती है, तो धर्म के कार्य में वह फिर भी, इतनी ढीली कहलायी जानेपर भी, सम्पूर्ण सजीव हो उठती है। इस सभा में कौनसी ऐसी बात थी जिसके देखने के लिए दस बारह या छ सात मील की दूरी से कष्ट उठाकर, पैसा खर्च करके, नित्य हजारों मनुष्य इकट्ठे होते थे ? बड़े बड़े व्याख्यानदाताओं के मुखारविन्दसे भक्ति प्रेम और ज्ञान की पीयूषधारा अपने कानों की राह से पीनेके लिए क्यों इतने लोग बटुरते थे ? कौनसी मोहिनी शक्ति किस मोहनमन्त्र ने इतने हिन्दुओं को एक भाव में, एकता के सूत्र में बाँध दिया था ? इसका कारण वही प्राचीन, अनन्त, असीम परम पवित्र सनातन भारतीय धर्म है। इसी धर्म ही के बल से एक दिन भारत का उत्थान हुआ था, इसी धर्म की हीनता से भारतका पतन हुआ है, और जब भस्म के भीतर छिपी हुई आग के समान भारतवासियों के अन्तःकरण में अब भी धर्म का बीज इतनी सजीवता से ढका हुआ है कि केवलमात्र कुछ छपी हुई नोटिसों को पढ़ कर इतने लोग धर्मव्याख्यानों को सुनने के लिए उन्मत्त मतवाले होकर दौड़ने लगते हैं, तो इस घोर पाप की अमावास्या की अंधियारी रात्रिमें भी आशाका चन्द्रमा हृदयाकाश में पूर्ण ज्योति से प्रकाशमान होकर कहने लगता है कि भारतमाताको बार बार घरसे बाहरसे, चारों ओरसे दुःख मिलते रहने पर भी कभी इस देशसे सनातनधर्म की धारा नहीं सूखने पावेगी। बाहरी शत्रु और घरके विभीषणों ने भी लाख यत्न किये, परन्तु सनातन—धर्मकी ज्योति कभी बुझी नहीं, क्षीण होगयी, परन्तु समय पातेही फिर उज्ज्वल प्रकाश फैलाने लगती है। जो कुछ देखा, उससे यही आशा है बाहरी आचरणों से अनेक कारणोंसे हिन्दू आज आचारभ्रष्ट होगये हों, परन्तु उनके अन्तःकरण से सनातनधर्म का तेज नहीं हटेगा। इस समय केवल सदाचारी आचार्यों की कमी है धर्माचार्य गण गाँव गाँव में अपने सरल हृदय भाइयों को उ

शिक्षा देनेसे मुख न मोडेंगे तो हमें पूर्ण आशा है कि सनातनधर्म की मुरझायी हुई लता फिर हरी भरी होकर हम लोगोंके दुःख दारिद्रय को दूर करने लगेगी। यदि हमारे धार्मिक नेतागण बीच बीचमें नश्तर दे देकर अनाचारियों के नासूरों को नाश करते रहेंगे, तो उनका मुट्ठी भरका दल कभी सनातनधर्मावलम्बियोंको हानि नहीं पहुँचा सकेगा।

धन्य है दानापुर के सनातनधर्मावलम्बी भाइयोंको कि उन्होंने पञ्जाब से पण्डित दीनदयालु शर्मा व्याख्यान वाचस्पति शाहजहांपुर से महोपदेशक पण्डित कन्हैयालालजी आदि धर्मव्याख्यानाओं को बुलवा कर हम लोगोंको कृतार्थ किया है और धन्य है श्रीमान् दरभङ्गा नरेशजी को कि आपने बुड्ढे पाटलीपुत्र को समग्र विहार भूमि की धर्म राजधानी बनाने का प्रसाद दिलवाया है। धन्य है पटना की सनातनधर्म सभाके कार्यकर्त्ताओं को कि जो वर्ष तक ज्यों त्यों करके कठिन परिश्रम और सेवाके द्वारा अपनी सभाको जीवित रख सके, जिससे अब उसी सभाको सारे विहार भर की मुखसभा विहारको धर्मराजधानी बनने का सौभाग्य मिलने वाला है, और धन्य है समग्र पटनावासियोंको कि उन्होंने मिलकर थानकी थाम में ५०००) इस धर्म गढ के बनानेके लिये वचन दिये हैं। उत्साहका इतना वेग था कि दीन दुखियों और निर्धन मनुष्यों ने दो चार पैसे तक धर्मकार्य में दे डालना अपना परम कर्त्तव्य माना। एक नाऊने ११) दिये। एक पान बेचनेवाले ने २५) दिये। एक कहार ने एक रुपया दिया। किसी बुढ़िया अनाथिनी ने दो आना ही देकर अपना जन्म सफल बनाया। इसी भांति धर्मभवन निर्माण के लिए जिससे जो कुछ बना अनायास बिना और जबरदस्तीके धड़ाधड देना आरंभ किया। स्वयं महाराजा बहादुर दरभंगा ने इस भवन के बनवाने में जो कुछ रुपया घटेगा उसे पूरा कर देनेका वचन दिया है जिस विशाल भूमिमें इतने हजार मनुष्यों का जमघट था, उसके मालिक हैं रामचन्द्र मागोराम नामक प्रसिद्ध व्यापारी कोठी के अधिकारी श्रीयुत बद्रीदासजी। इसी भूमिके किनारे एक और रामदसार कहे

के तीन मकान हैं। इस कसेरेने कहा है कि यदि यहां धर्म भवनके लिए अपनी यही भूमि दान करदे तो मैं भी इसी भूमिके पासवाले तीनों मकानोंकी भूमि सभाको दे डालूंगा। कहिए तो इस से बढ़कर धार्मिक आग्रह और क्या होसकता है? स्थानाभाव के कारण इस सभाकी काररवाई के विषय में इस बार सब बातें नहीं प्रकाशित हो सकी।

पञ्जावकेसरी पण्डित गोपीनाथ जी को पटना के विद्यार्थियों का धन्यवाद

पंडित गोपीनाथ जी ने पंजाब की हिन्दू सभा के स्थापन और परिचालन करने में एक समय बहुत ही परिश्रम किया था, और यह आपके निःस्वार्थ उद्योग का फल है कि पंजाब की सनातन धर्मसभा आज तक इतनी सुन्दर सफलता से भटके हुए हिन्दुओं को अपने बाप दादोंके धर्म पर दृढ़ रखने की चेष्टा कर रही है। पंडितजी के धाराप्रवाही व्याख्यानोंको सुनकर पटनाके अंगरेजी शिक्षित युवकों के मन पर जो प्रभाव पड़ा है उसका नमूना नीचे प्रकाशित पत्रसे मिल सकेगा। यह पत्र सनातन-धर्म-सभा के अव सर पर अन्तिम दिवस कुछ युवाओंने अंगरेजी में लिख कर पंडित जी को दिया था। सर्वसाधारण की जानकारी के लिए हम उसका हिन्दी अनुवाद यहां प्रकाशित करते हैं—

"कौन स्मारक जग में छोड़ा, कहिए श्री महाराज?
सदाचार अपने से सबको यहां बनाया आज।"

प्रिय महाशय,

आजकल विद्यार्थी अंगरेजी साहित्य और विज्ञान पढ़ पढ़ कर दलीलों के लिए आग्रह किया करते हैं और अपने को तार्किक वा न्यायी (Reasoneble) बनाना अपना धर्म समझते हैं। यह बात तो अच्छी है, परन्तु उनके स्वभाव बाल्यावस्था के कारण कच्चे होनेसे वे स्वयं तर्क द्वारा सब बातों के कारण नहीं समझ सकते जिनको वे अपने सामने होते देखते हैं—वे बातें चाहे सांसारिक हों चाहे धार्मिक। इस निरोध ने आजकलों का राह दिखाने की प्रणाली

जाता है, यद्यपि वे अहंकार के कारण अपने को विद्वान् या शिक्षित (Educated) समझते हैं। इनको सच्ची राह का पता बतलाने से ये फिर धर्ममार्ग से कभी नहीं भटकेंगे और धर्म ही प्रत्येक मनुष्य या जाति के विषय में प्रधान सामग्री है—वह धर्म जो कि हमके बाप दादों का धर्म है, जिसके विषय में यह कहा जासकता है कि वे लोग वर्त्तमान काल की जातियों के उदय के बहुत काल पहिले ही से सभ्यता की ऊंची चोटी तक पहुँचे हुए थे।

आपने कृपा करके हम सबको राह बतलाने का भार अपने ऊपर लिया है, हमको आप अंधेरी गलीमें दीपक दिखाने का काम कर रहे हैं, हमारे लिए अवनति का रास्ता पक्का करने वाले अंगरेजी रङ्ग ढङ्ग, अनर्थकारी रीति, और फैशनों से आप हम को बचा रहे हैं, आप हमको हमारा धर्म—सच्चा धर्म—अविनाशी धर्म, बतला रहे हैं महाशय, आपसे हमलोग अपनी निष्कपट कृतज्ञता प्रकट करते हैं और आपको विश्वास दिलाते हैं कि हमलोग सदा आपकी दया की स्मृति अपने हृदयों में बनाये रहेंगे। हमको आशा है कि आप सदा हमलोगों पर कृपा की दृष्टि रखियेगा।

आपके आज्ञाकारी पटनावासी छात्रवृन्द

राय राधाकृष्ण बहादुरकी वाटिका में सनातनधर्म सभा

गत बुधवार को सन्ध्याकाल में पटना के प्रसिद्ध रईस राय राधा कृष्ण बहादुर ने अपनी गंगामहल नामक विशाल वाटिका में सनातनधर्म सभा को निमन्त्रण दिया था। सनातनधर्म के विख्यात नेताओं का पटना के सनातन धर्मावलम्बी सज्जनों पर इतना भारी प्रभाव पड़ा है कि इस दिनांकी सभामंडप में कमसे कम ढाई हजार मनुष्य धर्मव्याख्यान सुनने के लिए पहुंचे थे। राय साहब का यह विशाल उद्यानभवन बड़ा ही रमणीय है, और गंगाजी के पवित्र तट पर बना हुआ है। सामने दूसरे पार गंगाजी से गंडकी नदी के संयोग का नैसर्गिक दृश्य भी देखनेवालों के नेत्रोंको आकर्षित करता है। ऐसे सुन्दर स्थान पर धर्मानुष्ठानोंका होना मानो एक स्वाभाविक बात सी जचती थी। अस्तु एक विशाल और सुन्दर शामियाने के नीचे सभाका कार्य आरम्भ हुआ और सम्मतिसे साहित्याचार्य

रामावतार शर्मा जी सभापति के पद के लिए चुने गये। सभापति महाशय ने प्रारम्भिक वक्तृता में कहा कि हमलोगों को धर्म कर्म की छोटी छोटी बातों पर लड़ाई झगड़ा करना उचित नहीं। धर्म असल में सब जातियों का सब मतानुयायियों का एक ही है। सब धर्मानुयायी सदाचार की शिक्षा देते हैं। सदाचार के पालन में कहीं किसी में मतभेद नहीं है। परन्तु लड़ाई झगड़ा मतमतान्तर केवल उन सदाचारों को पालन करने की प्रणाली मात्र ही में होता है। आपने समझाया कि आर्य्यसमाजी अपने हवनादिक कर्म से सन्तुष्ट रहें, सनातनसमाजी राम, कृष्ण आदि किसी भी स्वरूपमें परमेश्वर का भजन करें, परस्पर किसी को यह कहने का अधिकार नहीं कि-तुम्हारा कार्य अनुचित है। सबलोग एक ही स्थान पर पहुँचने की चेष्टा करते हैं, केवल मार्ग सबके विभिन्न हैं।

सबलोग स्पष्ट भाषणप्रियता के कारण प०रामावतार शर्माको जो कुछ मनमें आता था कहा करतेथे। कोई कोई आपको नास्तिक तक कहने में नहीं हिचकने थे। परन्तु पंडितजी महाराजने इस दिन स्पष्टरूपसे कहदिया कि कोई कुछ भी कहाकरे, हमको अपने मतलबसे मतलब हम भली प्रकार जानते हैं कि हमारे उपास्य देव श्रीकृष्णचन्द्रजी महाराज हैं। आपने ओर भी कहा कि वादविवाद करना हो तो असली वेदरूपी वृक्षकी मूलमें कुल्हाड़ी चलाना या परस्पर अनबन पैदा करना अच्छा नहीं। वाद विवाद केवल दार्शनिक तत्वों पर हो सकता है, और दार्शनिक बातों पर जितना चाहिए उतना तर्क कीजिए, कुछ हानि नहीं। परस्पर वैमनस्य बचाना अत्यन्त प्रयोजनीय है।

सभापति जी के पश्चात् शाहजहांपुर निवासी धार्मिवर पंडित कन्हैयालाल जी ने अपनी सुललित भाषा में श्रीकृष्ण चन्द्रजी की रासलीला सम्बन्धी ललित कथा के गूढ़ तात्पर्य को ऐसा सुन्दर समाधान किया कि साधारण बुद्धि के मनुष्य भी इसको भली प्रकार समझ सकें। अनर्थवादी लोग श्रीकृष्णचन्द्रजी की व्रजलीलाको अश्लील और घृणार्ह बतला कर हमारे शास्त्रों की निन्दा करते हैं। परन्तु पण्डित कन्हैयालालजी ने जिस मधुर मनोहर रीतिसे कृष्ण

लीला के गूढ़ तत्वों को समझाया, हमको पूर्ण आशा है कि उससे सुननेवालों के मनमें तनिक भी सन्देह न रहा होगा।

अब पंडित गोपीनाथजी के बोलने का समय आया। पंडित गोपीनाथ जी बड़े तेजस्वी, बड़े रसिक, बड़े प्रभाव शाली वक्ता हैं। आपने सब युवक मंडली को समझाया कि जो लोग धर्मव्याख्या करने के अनधिकारी हैं, उनको कभी अपने सनातनधर्म की निन्दा करने का अवसर मत दीजिए, और कह दीजिए, आपकी बात हम नहीं सुनते। जो लोग सब बातों में केवल अंगरेजी उछलकूद, अंगरेजी रहन सहन, पहिरावा और खानपान की नकल करते हैं, उनको हमारे धर्मशास्त्रों पर सम्मति देने का राई भर भी अधिकार नहीं। हमको यदि अंगरेजों की नकल ही करना है तो हम उनके सद्गुणों की ही नकल करें।अंगरेज जहां जाता है,अंगरेज जहां रहता है, खाने पीने में, पहिरावे में, रहन सहन में अंगरेज ही बना रहता है। हिन्दुस्तानी ऐसा क्यों नहीं करते? यदि उनको विलायतमें भी जाकर रहना हो तो वहां भी सब बातों में हिन्दोस्तानी ही बन कर रहना चाहिए।

सर्वोपरान्त विद्यावारिधि—धर्मधुरन्धर श्रीयुत व्याख्यान वाचस्पति पंडित दीनदयालु जी ने अमृतवर्षा की झड़ी लगा दी। स्थानाभाव से इसवार सब बातों का लिखना कठिन है। इतना ही कहना इसवार अलम् होगा। सब श्रोता कृतकृत्य होगये, जिनको सुनने का सौभाग्य नहीं मिला वे अभागे हैं।

—०—

श्रीमान् मिथिलेश का व्याख्यान।

जो दानापुर सनातन धर्मसभा के वार्षिकोत्सव पर श्रीमान् ने दिया था।

ॐ श्रीगणेशायनमः। ॐ श्रीसरस्वत्यै नमः।

मङ्गलंभगवान् विष्णुर्मङ्गलं गरुडध्वजः।

मङ्गलंपुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः॥

हे हमारे प्रियवर सनातनधर्मावलम्बी सज्जनगण!

कोटिशः धन्यवाद है उस जगन्नियन्ता जगदीश्वर भक्तवत्सल परमदेव परमात्मा को जिस की अखण्ड कृपा और अनुग्रह से आप महाशयों के मन में यह प्रेरणा हुई कि आप लोग अपने वृद्ध पिता स्वरूप सनातनधर्म की सेवा करें जिस के

अपने इस अमूल्य धन और युगयुगान्तर की वंश परम्परागत सम्पत्ति वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करें और अपने २ वर्ण धर्मानुसार सब कोई अपने २ सनातनधर्म पर आरूढ़ रहें—इसी में हमारा और आपका कल्याण है।

मित्रगण ! हमारा स्वास्थ्य आज कई सप्ताह से ठीक नहीं है और हमारा इस सभा में उपस्थित होना असम्भव था परन्तु आप सब महाशयों के अनुरोध से और यह विचार कर कि यदि हमारी उपस्थिति से आप को धर्मसेवा में कुछ उत्साह प्राप्त हो तो इस से अधिक अहोभाग्य क्या है, हम आज सहर्ष यहां उपस्थित हुए हैं, और इस अवस्था में अधिक न कहकर समाप्त करते हैं कि आप लोग सनातनधर्म की सेवा और रक्षा में पूर्ण उत्साह के साथ तन मन धन से कटिबद्ध हो जावें। इस सभा की नींव ऐसी दृढ़ कीजिए कि इस विहार प्रान्त में यह एक आदर्श सभा हो जावे। सनातनधर्म का प्रचार स्थान २ पर करें और उपदेशकों को वृद्धि करें और सदासर्वदा इस बात को स्मरण रक्खें कि—

"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"

इसप्रकार गत सप्ताह में दानापुर में सानतन धर्म सभा का वार्षिकोत्सव अत्यन्त समारोह के साथ मनाया गया था महाराजा दरभंगा भी तीसरे दिन सभा में पधारे थे, और आपने एक व्याख्यान भी दिया था। इनके सिवाय व्याख्यान वाचस्पति पंडित दीनदयालु शर्माजी तथा अनेक सज्जनों के व्याख्यान हुए थे पंडित गोपीनाथ जी ने तीनों दिन अत्यन्त सारगर्भित व्याख्यान दिये, तथा अपने व्याख्यान में बहुत सभ्य शब्दों में आर्यसमाजवालों को मतमतान्तर के जोश में आकर लागके बदले फूट फैलाने की चेष्टाएं न करने का उपदेश दिया था। हमको जहां तक ज्ञात हुआ है, पंडित गोपीनाथ जीने एक भी अनुचित शब्द का प्रयोग न कर प्रातृभाव से आर्यसमाजियों के कार्य की आलोचना की थी। इसी अपराध का बदला लेने के लिए किसी विद्यादिग्गज बुद्धि-पुंगव आर्यसमाजावतंस महाशय ने अत्यन्त असभ्य और मानहानिकर शब्दों में पंडितजी की निन्दा करते हुए एक छपी हुई नोटिस बांटकर पंडितजी की ओर से सब लोगों का

मन फेरने की चेष्टा की थी। परन्तु हमको मालूम हुआ है कि कई आर्यसमाजी पंडित जी के व्याख्यानों को सुनकर इतने गद्गद् हो गये कि वे अपना भारी भ्रम समझकर समाजी नीतियों को अयौक्तिक समझने लगे हैं। बहुतसे आर्यसमाजी सज्जनों हो ने पंडितजीके विरुद्ध उपर्युक्त असभ्य नोटिस की निन्दा भी की है। इससे जान पड़ता है कि सभी आर्यसमाजी नीचता और असभ्यता को अपना आदर्श नहीं मानते लंकापुरी में भी विभीषणों का निवास हुआ करता है।

—०—

आध्यात्मिक जगत्में ब्रह्मज्ञान

(गताङ्कसे आगे)

ज्ञानकी साकार मूलकता—

ज्ञानकी चार अवस्था होती हैं, यथा—ज्ञातव्य विषय, ज्ञानेन्द्रिय ज्ञानलाभकी क्रिया और ब्रह्म। हम देखते हैं, कि | ज्ञातव्य (जानने योग्य) विषय और ज्ञानेन्द्रियें साकार हैं, ज्ञान लाभकी क्रिया भी साकारमूलक ही होती है, केवल ब्रह्मनिराकार है। अब ज्ञानकी क्रिया क्या वस्तु है इसका हम स्पष्टरूप से वर्णन करते हैं।

जिस प्रणाली के द्वारा हम बाहरी जगत्की सकल वस्तुओंको इन्द्रियोंकी सहायतासे अपने ज्ञानगत करते हैं। वह प्रणाली—विषय ग्रहण, कल्पना, विचार और स्मरण आदि हैं। मन इन्द्रियों के द्वारा बाहरी जगत्में से रूप रस आदि विषयोंको ग्रहण करता है, तदनन्तर मनमें उन सबका चित्र या प्रतिबिम्ब भासने लगता है उन सब प्रतिबिम्बोंको स्मरणशक्ति और विचारशक्ति के द्वारा सुसज्जित किया जाता है। हमने चक्षु इन्द्रियके द्वारा एक फूलको देखा, मनमें उसका प्रतिबिम्ब पड़ा, उस समय मन स्मरण करनेलगा, कि—मैंने ऐसा फूल पहिले कभी देखा है या नहीं? तदनन्तर पूर्वसञ्चित फूलोंके सब चित्र सामने आनेलगे, होते २ एक फूलका चित्र पायागया, उसके बाद विचार शक्तिके द्वारा इस फूलके चित्रको मिला कर मनने सिद्धान्त किया, कि—यह गुलाबका फूल है, यह सब कार्य निमेष मात्रमें होगया

अपने इस अमूल्य धन और युगयुगान्तर की वंश परम्परागत सम्पत्ति वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करें और अपने २ वर्ण धर्मानुसार सब कोई अपने २ सनातनधर्म पर आरूढ़ रहें—इसी में हमारा और आपका कल्याण है।

मित्रगण ! हमारा स्वास्थ्य आज कई सप्ताह से ठीक नहीं है और हमारा इस सभा में उपस्थित होना असम्भव था परन्तु आप सब महाशयों के अनुरोध से और यह विचार कर कि यदि हमारी उपस्थिति से आप को धर्मसेवा में कुछ उत्साह प्राप्त हो तो इस से अधिक अहोभाग्य क्या है, हम आज सहर्ष यहां उपस्थित हुए हैं, और इस अवस्था में अधिक न कहकर समाप्त करते हैं कि आप लोग सनातनधर्म की सेवा और रक्षा में पूर्ण उत्साह के साथ तन मन धन से कटिबद्ध हो जावें। इस सभा की नींव ऐसी दृढ़ कीजिए कि इस विहार प्रान्त में यह एक आदर्श सभा हो जावे। सनातनधर्म का प्रचार स्थान २ पर करें और उपदेशकों की वृद्धि करें और सदासर्वदा इसबात को स्मरण रक्खें कि—

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"

इसप्रकार गत सप्ताह में दानापुर में सानतन धर्म सभा का वार्षिकोत्सव अत्यन्त समारोहके साथ मनाया गया था।महाराजा दरभंगा भी तीसरे दिन सभा में पधारे थे, और आपने एक व्याख्यान भी दिया था।इनके सिवाय व्याख्यान वाचस्पति पंडित दीनदयालु शर्माजी तथा अनेक सज्जनों के व्याख्यान हुए थे पंडित गोपीनाथ जी ने तीनों दिन अत्यन्त सारगर्भित व्याख्यान दिये, तथा अपने व्याख्यान में बहुत सभ्य शब्दों में आर्यसमाजवालों को मतमतान्तर के जोश में आकर लासके बदले फूट फैलाने की चेष्टाएं न करने का उपदेश दिया था। हमको जहां तक ज्ञात हुआ है, पंडित गोपीनाथ जीने एक भी अनुचित शब्द का प्रयोग न कर भ्रातृभाव से आर्यसमाजियों के कार्य की आलोचनाकी थी। इसी अपराध का बदला लेने के लिए किसी विद्यादिग्गज बुद्धि-पुंगव आर्यसमाजावतंस महाशय ने अत्यन्त असभ्य और मानहानिकर शब्दों में पंडितजी की निन्दा करते हुए एक छपी हुई नोटिस बांटकर पंडितजी की ओर से सब लोगों का

तन फेरने की चेष्टा की थी। परन्तु हमको मालूम हुआ है कि भाई आर्यसमाजी पंडित जी के व्याख्यानों को सुनकर इतने गद्गद् हो गये कि वे अपना भारी भ्रम समझकर समाजी नीतियों को अलौकिक समझने लगे हैं। बहुतसे आर्यसमाजी सज्जनों ही ने पंडितजीके विरुद्ध उपर्युक्त असभ्य नोटिस की निन्दा भी की है। इससे ज्ञान पड़ता है कि सभी आर्यसमाजी नीचता और असभ्यता को अपना आदर्श नहीं मानते लंकापुरी में भी विभीषणों का निवास हुआ करता है।

—o—

आध्यात्मिक जगत्में ब्रह्मज्ञान

(गताङ्कसे आगे)

ज्ञानकी साकार मूलकता—

ज्ञानकी चार अवस्था होती हैं, यथा—ज्ञातव्य विषय, ज्ञानेन्द्रिय ज्ञानात्मकी क्रिया और ब्रह्म। हम देखते हैं, कि | ज्ञातव्य (जानने योग्य) विषय और ज्ञानेन्द्रियें साकार हैं, ज्ञान लाभकी क्रिया भी साकारमूलक ही होती है, केवल ब्रह्मनिराकार है। अब ज्ञानकी क्रिया क्या वस्तु है इसका हम स्पष्टरूप से वर्णन करते हैं।

जिस प्रणाली के द्वारा हम बाहरी जगत्की सकल वस्तुओंको इन्द्रियोंकी सहायतासे अपने ज्ञानगत करते हैं। वह प्रणाली—विषय ग्रहण, कल्पना, विचार और स्मरण आदि हैं। मन इन्द्रियों के द्वारा बाहरी जगत्में से रूप रस आदि विषयोंको ग्रहण करता है, तदनन्तर मनमें उन सबका चित्र या प्रतिबिम्ब भासने लगता है उन सब प्रतिबिम्बोंको स्मरणशक्ति और विचारशक्तिके द्वारा सुसज्जित किया जाता है। हमने चक्षु इन्द्रियके द्वारा एक फूलको देखा, मनमें उसका प्रतिबिम्ब पड़ा, उस समय मन स्मरण करनेलगा, कि—मैंने ऐसा फूल पहिले कभी देखा है या नहीं? तदनन्तर पूर्वसञ्चित फूलोंके सब चित्र सामने आनेलगे, होते २ एक फूलका चित्र पायागया, उसके बाद विचार शक्तिके द्वारा इस फूलके चित्रको मिला कर मनने सिद्धान्त किया, कि—यह गुलाबका फूल है, यह सब कार्य निमेष मात्रमें होगया

अपने इस अमुल्य धन और युगयुगान्तर की वंश परम्परागत सम्पत्ति वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करें और अपने २ वर्णधर्मानुसार सब कोई अपने २ सनातनधर्म पर आरूढ़ रहें—इसी में हमारा और आपका कल्याण है।

मित्रगण! हमारा स्वास्थ्य आज कई सप्ताह से ठीक नहीं है और हमारा इस सभा में उपस्थित होना असम्भव था परन्तु आप सब महाशयों के अनुरोध से और यह विचार कर कि यदि हमारी उपस्थिति से आप को धर्मसेवा में कुछ उत्साह प्राप्त हो तो इस से अधिक अहोभाग्य क्या है, हम आज सहर्ष यहां उपस्थित हुए हैं, और इस अवस्था में अधिक न कहकर समाप्त करते हैं कि आप लोग सनातनधर्म की सेवा और रक्षा में पूर्ण उत्साह के साथ तन मन धन से कटिबद्ध हो जावें। इस सभा की नींव ऐसी दृढ़ कीजिए कि इस विहार प्रान्त में यह एक आदर्श सभा हो जावे। सनातनधर्म का प्रचार स्थान २ पर करें और उपदेशकों की वृद्धि करें और सदासर्वदा इसबात को स्मरण रक्खें कि—

मन फेरने की चेष्टा की थी। परन्तु हमको मालूम हुआ है कि कई आर्यसमाजी पंडित जी के व्याख्यानों को सुनकर इतने गद्गद हो गये कि वे अपना भारी भ्रम समझकर समाजी नीतियों को अलौकिक समझने लगे हैं। बहुतसे आर्यसमाजी सज्जनों ही ने पंडितजीके विरुद्ध उपर्युक्त असभ्य नोटिस की निन्दा भी की है। इससे ज्ञात पड़ता है कि सभी आर्यसमाजी नीचता और असभ्यता को अपना आदर्श नहीं मानते लंकापुरी में भी विभीषणों का निवास हुआ करता है।

—०—

आध्यात्मिक जगत्में ब्रह्मज्ञान

(गताङ्कसे आगे)

ज्ञानकी साकार मूलकता—

ज्ञानकी चार अवस्था होती हैं, यथा—ज्ञातव्य विषय, ज्ञानेन्द्रिय ज्ञानलाभकी क्रिया और ब्रह्म। हम देखते हैं, कि | ज्ञातव्य (जानने योग्य) विषय और ज्ञानेन्द्रियें साकार हैं, ज्ञान लाभकी क्रिया भी साकारमूलक ही होती है, केवल ब्रह्मनिराकार है। अब ज्ञानकी क्रिया क्या वस्तु है इसका हम स्पष्टरूप से वर्णन करते हैं।

जिस प्रणाली के द्वारा हम बाहरी जगत्‌की सकल वस्तुओंको इन्द्रियोंकी सहायतासे अपने ज्ञानगत करते हैं। वह प्रणाली—विषय ग्रहण, कल्पना, विचार और स्मरण आदि हैं। मन इन्द्रियों के द्वारा बाहरी जगत्‌में से रूप रस आदि विषयोंको ग्रहण करता है, तदनन्तर मनमें उन सबका चित्र या प्रतिबिम्ब भासने लगता है उन सब प्रतिबिम्बोंको स्मरणशक्ति और विचारशक्तिके द्वारा सुसज्जित किया जाता है। हमने चक्षु इन्द्रियके द्वारा एक फूलको देखा, मनमें उसका प्रतिबिम्ब पड़ा, उस समय मन स्मरण करनेलगा, कि—ऐसे ऐसा फूल पहिले कभी देखा है या नहीं ! तदनन्तर पूर्वसञ्चित फूलोंके सब चित्र सामने आनेलगे, होते २ एक फूलका चित्र पायागया, उसके बाद विचार शक्तिके द्वारा इस फूलके चित्रको मिला कर मनने सिद्धान्त किया, कि—यह गुलाबका फूल है, यह सब कार्य निमेष मात्रमें होगया

अपने इस अमूल्य धन और युगयुगान्तर की वंश परम्परागत सम्पत्ति वर्णाश्रम धर्म की रक्षा करें और अपने २ वर्ण धर्मानुसार सब कोई अपने २ सनातनधर्म पर आरूढ़ रहें—इसी में हमारा और आपका कल्याण है।

मित्रगण ! हमारा स्वास्थ्य आज कई सप्ताह से ठीक नहीं है और हमारा इस सभा में उपस्थित होना असम्भव था परन्तु आप सब महाशयों के अनुरोध से और यह विचार कर कि यदि हमारी उपस्थिति से आप को धर्मसेवा में कुछ उत्साह प्राप्त हो तो इस से अधिक अहोभाग्य क्या है, हम आज सहर्ष यहां उपस्थित हुए हैं, और इस अवस्था में अधिक न कहकर समाप्त करते हैं कि आप लोग सनातनधर्म की सेवा और रक्षा में पूर्ण उत्साह के साथ तन मन धन से कटिबद्ध हो जावें। इस सभा की नींव ऐसी दृढ़ कीजिए कि इस बिहार प्रान्त में यह एक आदर्श सभा हो जावे। सनातनधर्म का प्रचार स्थान २ पर करें और उपदेशकों की वृद्धि करें और सदासर्वदा इसबात को स्मरण रक्खें कि—

'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।"

इसप्रकार गत सप्ताह में दानापुर में सानतन धर्म सभा का वार्षिकोत्सव अत्यन्त समारोहके साथ मनाया गया था।महाराजा दरभंगा भी तीसरे दिन सभा में पधारे थे, और आपने एक व्याख्यान भी दिया था।इनके सिवाय व्याख्यान वाचस्पति पंडित दीनदयालु शर्माजी तथा अनेक सज्जनों के व्याख्यान हुए थे पंडित गोपीनाथ जी ने तीनों दिन अत्यन्त सारगर्भित व्याख्यान दिये, तथा अपने व्याख्यान में बहुत सभ्य शब्दों में आर्यसमाजवालों को मतमतान्तर के जोश [illegible] आकर लाभके बदले फूट फैलाने की चेष्टाएं न करने का उपदेश [illegible]या था। हमको जहां तक ज्ञात हुआ है, पंडित गोपीनाथ जीने [illegible]क भी अनुचित शब्द का प्रयोग न कर भ्रातृभाव से आर्यसमाजियों [illegible]ार्य की आलोचनाकी थी। इसी अपराध का बदला लेने के लिए विद्यादिग्गज बुद्धि-पुंगव आर्यसमाजावतंस महाशय ने अत्यन्त और मानहानिकर शब्दों में पंडितजी की निन्दा करते हुए [illegible]ी हुई नोटिस बांटकर पंडितजी की ओर से सब लोगों का

मन फेरने की चेष्टा की थी। परन्तु हमको मालूम हुआ है कि कई आर्यसमाजी पंडित जी के व्याख्यानों को सुनकर इतने गद्गद हो गये कि वे अपना भारी भ्रम समझकर समाजो नीतियों को अयौक्तिक समझने लगे हैं। बहुतसे आर्यसमाजी सज्जनों ही ने पंडितजीके विरुद्ध उपर्युक्त असभ्य नोटिस की निन्दा भी की है। इससे ज्ञात पड़ता है कि सभी आर्यसमाजी नीचता और असभ्यता को अपना आदर्श नहीं मानते लंकापुरी में भी विभीषणों का निवास हुआ करता है।

—०—

आध्यात्मिक जगत्में ब्रह्मज्ञान

(गताङ्कसे आगे)

ज्ञानकी साकार मूलकता—

ज्ञानकी चार अवस्था होती हैं, यथा—ज्ञातव्य विषय, ज्ञानेन्द्रिय ज्ञानलाभकी क्रिया और ब्रह्म। हम देखते हैं, कि ज्ञातव्य (जानने योग्य) विषय और ज्ञानेन्द्रियें साकार हैं, ज्ञान लाभकी क्रिया भी साकारमूलक ही होती है, केवल ब्रह्मनिराकार है। अब ज्ञानकी क्रिया क्या वस्तु है इसका हम स्पष्टरूप से वर्णन करते हैं।

जिस प्रणाली के द्वारा हम बाहरी जगत्की सकल वस्तुओंको इंद्रियोंकी सहायतासे अपने ज्ञानगत करते हैं। वह प्रणाली—विषय ग्रहण, कल्पना, विचार और स्मरण आदि है। मन इन्द्रियों के द्वारा बाहरी जगत्में से रूप रस आदि विषयोंको ग्रहण करता है, तदनन्तर मनमें उन सबका चित्र या प्रतिबिम्ब भासने लगता है उन सब प्रतिबिम्बोंको स्मरणशक्ति और विचारशक्तिके द्वारा सुमज्जित किया जाता है। हमने चक्षु इन्द्रियके द्वारा एक फूलको देखा, मनमें उसका प्रतिबिम्ब पड़ा, उस समय मन स्मरण करनेलगा, कि—मैंने ऐसा फूल पहिले कभी देखा है या नहीं ? तदनन्तर पूर्वसञ्चित फूलोंके सब चित्र सामने आनेलगे, होते २ एक फूलका चित्र पायागया, उसके साथ विचार शक्तिके द्वारा इस फूलके चित्रको मिला कर मनने सिद्धान्त किया, कि—यह गुलाबका फूल है, यह सब कार्य निमेष मात्रमें होगया

इसप्रकार हमने देखलिया, कि—ज्ञान शब्दसे जितने कार्य समझे जाते हैं वे सब ही रूप रस आदि विषयोंसे भिन्न नहीं होसकते। जगत्में से साकार रूप रस आदि के चित्रोंका संग्रह करने पर ही ज्ञानका कार्य होसकता है, इसलिये ज्ञानकी सब क्रियाएं रूप रस आदिके आधार पर स्थित हैं और उनके अनन्तर ही होती हैं, इस लिये ज्ञान साकारमूलक है (१)। यहाँ एक बात स्मरण करादेना आवश्यक है कि—भावना और अनुभव एक पदार्थ नहीं हैं, दुःखकी भावना और दुःखका अनुभव एक नहीं होसकता। एक पुरुष अपने पुत्र नाशका समाचार पाकर दुःखका अनुभव करता है और मैं उसके उस दुःखको देखता हूँ यहां पुत्रके शोकसे उसके हृदयमें एक घोर उलटफेर होजाता है, वह अपने अन्तःकरणमें सहस्रों विच्छुओंके काटनेसे भी अधिक दुःखका अनुभव करता है, उसका शरीर वज्रपात से जैसे निश्चेष्ट होकर भूमिपर लोटता है, उसको दुःख सुख कुछ नहीं मालूम होता, दोनों नेत्रोंमें से बराबर आँसुओंकी धार बहने लगती है मैं उससे कुछ भी सम्बन्ध न रखनेवाला एक दर्शक हूँ, परन्तु मुझे वैसा अनुभव या मेरे चित्तपर जरा भी विकार नहीं होता और मैं उसके दुःखको प्रत्यक्ष देखता हूँ, उसके दुःखकी चिन्ता करता हूँ

(१) ध्यान के द्वारा जो ज्ञान होता है, वह भी बाहरी जगत् से संग्रह करेहुए चित्रोंकी सहायताके बिना नहीं होसकता। यदि उन चित्रोंको मनसे हटादियाजाय तो मनमें किसी प्रकारका चिन्तवन होही नहीं सकता, मन निर्विषय और निस्पन्द होजाय, उसमें कोई भी क्रिया न रहे। अथवा शरीरके भीतर स्थित फुलफुस हृत्पिण्ड आदि की क्रिया से एक प्रकारका अनुभव होता है, जैसे कि—गरमी सरदी आदिका अनुभव। भूख, प्यास, शरीरके किसी अङ्गमें पीड़ा आदि। ये सब शारीरिक अनुभव अवश्य ही शरीरके आश्रयसे होते हैं और उनका ज्ञान शरीरके किसी एक स्थानके अवलम्बनसे होता है दार्शनिक पण्डित मनके साथ तुलना करने पर शरीरको बाहरी जगत्में कहते हैं, इसलिये ये सब ही प्रकारका शारीरिक अनुभव साकार बाहरी जगत्का अवलम्बन लेकर होता है।

इसप्रकार दुखित की दशा देखकर उसकी भावना होनेपर भी उस दुःखका अनुभव मुझे नहीं होता है, इसकारण भावना और अनुभव एक पदार्थ नहीं है। दुःख सुख आदि निराकार भले ही हों परन्तु जब हमें उनकी भावना करनी होती है, उनका चिन्तवन करना होता है उस समय हम साकारका ही चिन्तवन करते हैं, क्योंकि—कोई भी चिन्ता हो उसमें बाहरी जगत् के चित्रोंसे मनको सजाना पड़ता है। उपरोक्त शोकाकुल पुरुषके दुःखको देखकर हमारे मनमें एक दुःखका बाहरी चित्र खुद आता है। उसका भूमिमें लोटना, गिरकर आँसू बहाना, शिर पीटना और हाय २ करके चिल्लाना आदि चित्र हम देख आते हैं, जब ही मैं दुःखकी बातका विचार करूँगा उसी समय वे साकार चित्र मेरे मनमें आ विराजेंगे, इसप्रकार मेरी दुःखकी चिन्ता और ज्ञान भी साकार ही होंगे।

ऐसे ही दुःखकी समान दया भी एक वृत्ति है। दया भले ही निराकार पदार्थ हो, परन्तु हमें जो दयाका ज्ञान होता है, वह निराकार न होकर साकार ही होता है। मैं जब दयाकी बातका चिन्तवन करता हूँ उस समय मेरे मनमें किसका उदय होता है? अवश्य दया का कोई साकार चित्र भासने लगता है। पहिले बाहरी जगत्में दयाके कार्योंको देखकर मैंने जिन दृष्टान्तोंके चित्रोंको चित्त में स्थान दे रक्खा है, दयाका प्रसंग छिड़ते ही मेरे मनमें उनमेंका कोई एक चित्र आ खड़ा होता है। जैसे कोई पुरुष भिखमँगे को देखकर उसको एक पैसा देता है और उस भिखमँगे को पैसा देते समय उस पुरुषकी आँखोंमेंसे आँसू गिरते हैं, यह दयाका चित्र अवश्य ही साकार है, इसलिये दया की बात का चिन्तवन करने पर हमको साकार ही चिन्तवन करना होता है। हमारी दयाका ज्ञान, साकार दयाके कार्यके ज्ञानके ऊपर निर्भर रहा, इस प्रकार प्रत्येक मानसिक वृत्ति या अवस्था का ज्ञान साकार ज्ञानकी सहायता से होता है और साकार ज्ञानके पीछे ही हुआ करता है।

अनुभव साकारमूलक होता है।

हमने विचार करके देखलिया, कि—हमारा दुःख दया आदिके अनुभवका ज्ञान साकार होता है। जब हम दुःख दया आदि के अनुभव का चिन्तवन करतेहैं उस समय हमारा चिन्तवन साकार ही होता है।

इसप्रकार हमने देखलिया, कि—ज्ञान शब्दसे जितने कार्य समझे जाते हैं वे सब ही रूप रस आदि विषयोंसे भिन्न नहीं होसकते। जगत्में से साकार रूप रस आदि के चित्रोंका संग्रह करने पर ही ज्ञानका कार्य होसकता है, इसलिये ज्ञानकी सब क्रियाएं रूप रस आदिके आधार पर स्थित हैं और उनके अनन्तर ही होती हैं, इस लिये ज्ञान साकारमूलक है (१)। यहाँ एक बात स्मरण करादेना आवश्यक है कि—भावना और अनुभव एक पदार्थ नहीं हैं, दुःखकी भावना और दुःखका अनुभव एक नहीं होसकता। एक पुरुष अपने पुत्रनाशका समाचार पाकर दुःखका अनुभव करता है और मैं उसके उस दुःखको देखता हूँ यहां पुत्रकेशोकसे उसके हृदयमें एक घोर उलटफेर होजाता है, वह अपने अन्तःकरणमें सहस्रों बिच्छुओंके काटनेसे भी अधिक दुःखका अनुभव करता है, उसका शरीर वज्रपात से जैसे निश्चेष्ट होकर भूमिपर लोटता है, उसको दुःख सुख कुछ नहीं मालूम होता, दोनों नेत्रोंमें से बराबर आँसुओंका धीर बहने लगती है मैं उससे कुछ भी सम्बन्ध न रखनेवाला एक दर्शक हूँ, परन्तु मुझे वैसा अनुभव या मेरे चित्तपर जरा भी विकार नहीं होता और मैं उसके दुःखको प्रत्यक्ष देखता हूँ, उसके दुःखका चिन्ता करता हूँ

(१) ध्यान के द्वारा जो ज्ञान होता है, वह भी बाहरी जगत् से संग्रह करेहुए चित्रोंकी सहायताके बिना नहीं होसकता। यदि उन चित्रोंको मनसे हटादियाजाय तो मनमें किसी प्रकारका चिन्तवन होही नहीं सकता, मन निर्विषय और निस्पन्द होजाय, उसमें कोई भी क्रिया न रहे। अथवा शरीरके भीतर स्थित फुसफुस हृत्पिण्ड आदि की क्रिया से एक प्रकारका अनुभव होता है, जैसे कि—गरमी सरदी आदिका अनुभव। भूख, प्यास, शरीरके किसी अङ्गमें पीड़ा आदि। ये सब शारीरिक अनुभव अवश्य ही शरीरके आश्रयसे होते हैं और उनका ज्ञान शरीरके किसी एक स्थानके अवलम्बनसे होता है दार्शनिक पण्डित उनके साथ तुलना करने पर शरीरको बाहरी जगत्में कहते हैं, इसलिये ये सब ही प्रकारका शारीरिक अनुभव [illegible] न अंदर होता है।

इसप्रकार दुखित की दशा देखकर उसकी भावना होनेपर भी उस दुःखका अनुभव मुझे नहीं होता है, इसकारण भावना और अनुभव एक पदार्थ नहीं है। दुःख सुख आदि निराकार भले ही हों परन्तु जब हमें उनकी भावना करनी होती है, मनको चिन्तवनकरना होता है उस समय हम साकारको ही चिन्तवन करते हैं, क्योंकि—कोई भी चिन्ता हो उसमें बाहरी जगत् के चित्रोंसे मनको सजाना पड़ता है। उपरोक्त शोकाकुल पुरुषके दुःखको देखकर हमारे मनमें एक दुःखकी बाहरी चित्र खुदजाता है। उसका भूमिमें लोटना, गिरकर आँसू बहाना, शिर पीटना और हाय २ करके चिल्लाना आदि चित्रपट खिचजाते हैं, जब ही मैं दुःखकी बातका विचार करूँगा उसी समय वे साकार चित्र मेरे मनमें आविराजेंगे, इसप्रकार मेरी दुःखकी चिन्ता और ज्ञान भी साकार ही होंगे।

ऐसे ही दुःखकी समान दया भी एक वृत्ति है ' दया भले ही निराकार पदार्थ हो, परन्तु हमें जो दयाका ज्ञान होता है, वह निराकार न होकर साकार ही होता है। मैं जब दयाकी बातका चिन्तवन करता हूँ उस समय मेरे मनमें किसका उदय होता है ? अवश्य दया का कोई साकार चित्र भासने लगता है। पहिले बाहरी जगत्में दयाके कार्योंका देखकर मैंने जिन दृष्टान्तोंके चित्रोंको चित्त में स्थान देरक्खा है, दयाका प्रसंग छिड़ते ही मेरे मनमें उनमेंका कोई एक चित्र आ खड़ा होताहै। जैसे कोई पुरुष भिखमँगे को देखकर उसको एक पैसा देता है और उस भिखमँगे को पैसा देते समय उस पुरुषकी आँखोंमेंसे आँसू गिरते हैं, यह दयाका चित्र अवश्य ही साकार है, इसलिये दया की बात का चिन्तवन करने पर हमको साकार ही चिन्तवन करना होता है। हमारी दयाका ज्ञान, साकार दयाके कार्यके ज्ञानके ऊपर निर्भर रहा, इस प्रकार प्रत्येक मानसिक वृत्ति या अवस्था का ज्ञान साकारज्ञानकी सहायता से होता है और साकार ज्ञानके पीछे ही हुआ करता है।

अनुभव साकारमूलक होता है।

हमने विचार करके देखलिया, कि—हमारा दुःख दया आदिके अनुभवका ज्ञान साकार होता है। जब हम दुःख का चिन्तवन करतेहैं उस समय [illegible] है।

परन्तु हमारा दुःख दया आदिका अनुभव साकार है या निराकार? और लोग दुःखका या दया का अनुभव करते हैं और मैं उस को देखता हूँ विचारता हूँ, यहाँ मेरे मनमें दुःख और दयाका ज्ञान साकार हुआ परन्तु जब मैं स्वयं दुःखका अनुभव करता हूँ अथवा दयाका अनुभव करता हूँ, उस समय मेरे मनमें कैसा भाव होता है? साकार भाव होता है या निराकार? अर्थात् दुःख दया आदि सब भावोंका ज्ञान साकार ही होता है, परन्तु वे स्वयं साकार हैं या निराकार? मनके तत्त्वको जाननेवाले पश्चिमी विद्वानोंका सिद्धान्त है, कि—अनुभवमात्र किसी वस्तु, विषय अथवा शरीरके किसी अङ्ग प्रत्यङ्गके अवलम्बनसे ही उत्पन्न होता है। हमारे इन्द्रियजन्य ज्ञानके साथ अनुभवका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, कि-अध्यापक बेन साहब ने तो इन्द्रियजन्य ज्ञान और अनुभवको एक ही पदार्थ माना है। यह हम पीछे दिखाचुके हैं, कि—साकार बाहरी जगत्को छोड़कर ऐन्द्रियिक ज्ञान उत्पन्न ही नहीं होसकता और साकार शरीरके बिना शारीरिक अनुभव नहीं होसकता, इस कारण साकार पदार्थों के साथ अनुभव का घनिष्ठसम्बन्ध है। भीतर या बाहर साकारपदार्थके साथ मिलित भावसे ही अनुभवका स्फुरण होता है, अनुभूतिके साथ साकार वस्तुके ज्ञानका अभेद सम्बन्ध है। कोई झूठी बात कहे तो हमें उसके ऊपर क्रोध आता है, उस क्रोधके साथ हम झूठ बोलनेवालेकी प्रतिमूर्ति या उसकी मिथ्या बातका चिन्तवन करते हैं झूठ बोलनेवालेको हमारे पाससे बुलाकार लेजाओ अथवा हमारे मनको दूसरी ओर को खेंचलो, उसी समय हमारा क्रोध थम जायगा। एक भिखमँगेकी दुर्दशाको देखकर हमारे मनमें दया आई है, जब तक हम उस भिखमँगेके विषय का चिन्तवन करते रहेंगे तबतक हमारे मनमें दया रहेगी, वह यदि तत्काल ही हमारे पाससे चलाजाय वा हमारा चित्त दूसरी ओरको आकृष्ट होजाय तो उसी समय वह दया हमारे मनसे दूर होजायगी। बहुत दिनोंके बाद एक भाईको देखकर हमारे मनमें सुख हुआ है, वह भाई जितने दिनों तक हमारे पास रहेगा तबतक ही हमको उसका ध्यान रहेगा और हमारा सुख भी तबतक ही रहेगा, जब वह चलाजायगा तब हमारा सुख भी च

के साथ ही चला जायगा। मैं अपने उस भाईसे प्रेम क्यों करता हूं ? बहुत दिनों तक एक साथ रहनेसे उसकी मूर्त्ति तथा कार्यसमूह हमारे मनमें दृढ़रूपसे अङ्कित होनेसे उसके ऊपर हमारा प्रेमभाव होगया है। यदि मैं उसकी बातोंका सर्वदा चिन्तवन नहीं करता, अथवा उसके साथ में नहीं रहा होता तो ऐसा प्रेम उत्पन्न होनेकी कुछ सम्भावना नहीं थी। बालक माताले अधिक प्रेम क्यों करता है ?, इसीलिये, कि—वह माताकी मूर्त्ति माताका व्यवहार और माताके सकल कार्योंको सदा ही देखाकरता है, और किसीके साथ उसका ऐसा घनिष्ठ संबन्ध नहीं होता है। जन्मभूमि और घरके ऊपर हमारी इतनी ममता क्यों है ?, इसीलिये कि—जन्मसे लेकर उस स्थानके सकल चित्र हमारे मनमें खुदे रहते हैं। और अधिक दृष्टान्त देना निरर्थक है, इसप्रकार सिद्ध हुआ, कि-क्रोध, दया, सुख, प्रेम आदि हरएक का अनुभव किसी वस्तु या विषयके ज्ञानको लेकर ही होता है और वस्तु या विषयके ज्ञानके साथ पूर्णरूपसे गुथाहुआ होता है, किसी वस्तु या विषयके ज्ञानके बिना अनुभव हो ही नहीं सकता, उस वस्तु या विषयको चिन्ता अवश्य हो साकार होती है, इसलिये ुभव भी साकार है।

(अपूर्ण)

ब्राह्मण और वर्णाश्रम

भारतवर्षमें ब्राह्मण ही चारों वेदोंके प्रकाशक और प्रचारक हैं, ाह्मणोंके पूर्वपुरुष ऋषि महर्षियोंने ही स्मृति, पुराण, इतिहास आदि । सम्पादन और सङ्कलन किया है, ब्राह्मणोंने ही भारतवर्षमें चातु र्वर्णसमाज और वर्णाश्रमधर्मको वेदोंमेंसे खोजकर निकाला है और सकी प्रतिष्ठा कीहै। ब्राह्मणोंने ही सकल [illegible] उच्चस्थान नेताकरसे स्थित होकर [illegible] ।मका परि- ालन किया [illegible] ।से रक्षा की [illegible] सब जातियें [illegible] गिर [illegible] होते थे।

ब्राह्मणजाति और ब्राह्मणोंका प्रचारित वर्णाश्रमधर्म ही अन्य वर्णोंका आदर्श था। अधिकारीके भेदसे उस आदर्शके अनुकूल वर्त्तावको ही सब लोग अपने जीवनका लक्ष्य समझते थे, इससे बढ़कर उच्चश्रेणीका आदर्श संसार में कहीं भी नहीं मिलता था। इसलिये सब ही लोग आनन्द चित्तसे श्रद्धाके साथ उस आदर्शका अनुसरण करते हुए अपने जीवनके उद्देश्यको सफल हुआ मानते थे। इसप्रकार ब्राह्मणोंकी प्रधानता और ब्राह्मणोंकी आज्ञामें रहकर एक समय हिन्दूनामधारी आर्यसन्तान चातुर्वर्ण्यसमाज और समाजके प्रत्येक अङ्गने सब ही बातोंमें असीम उन्नति पाई थी। उस उन्नतिकी समता इस समय तक पृथ्वी परकी कोई भी सुसभ्यजाति अनेकों बातोंमें नहीं करसकी है।

इस चातुर्वर्ण्यसमाजमें, इस वर्णाश्रमधर्म पर प्रतिष्ठित हिन्दूसमाजमें ब्राह्मणोंको ऐसी बेरोकटोक और सर्वाङ्गीण प्रधानता चिरकालतक किस कारणसे रही थी? इस बातका अनुसन्धान करने पर मालूम होता है, कि यह समाज और यह धर्म प्रत्येक विषय में संयम, त्याग और निवृत्ति मार्गकी प्रधानताके ऊपर प्रतिष्ठित रहा है। इस समाज और धर्म के अङ्गों पर दृष्टि डालीजाय तो उसकी प्रतिष्ठा होनेका मूलकारण भी यही सिद्ध होगा। सबसे पहिले ध्यान दो कि—ब्राह्मणोंकी प्रतिष्ठा किस बातमें है? सर्वत्यागी होकर सब वर्णोंकी मङ्गलकामना करना और उनका मङ्गल करनेमें ही ब्राह्मणोंकी प्रतिष्ठा है। यदि इसका विचार करें, कि—क्षत्रियोंकी प्रतिष्ठा किस बातमें है तो यही निचोड़ निकलता है, कि—अपने दुःख सुख पर ध्यान न देकर प्रजाकी रक्षा करनेमें ही क्षत्रियका सुयश है। भाई तक को वनवास देकर और आवश्यकता होने पर स्वयं भी वनमें जाकर प्रजाका रञ्जन और राज्यका मङ्गल करनेमें ही राजाकी प्रतिष्ठा है, ऐसे ही खेती, व्यापार, गोपालन आदि के द्वारा अन्न और धनका संग्रह करके उससे यज्ञ आदि धर्म कर्म करने राजाको टैक्स देने और अन्य वर्णोंकी रक्षा करने में वैश्यकी प्रतिष्ठा है। तथा ब्राह्मणादि द्विजोंकी सेवा करने में शूद्रजातिकी प्रतिष्ठा है। ऐसे ही ब्रह्मचारियों [illegible] ब्रह्मचर्यको धारण करके गुरुकी सेवा करते हुए अध्ययन

और तपस्या करने में है, केवल धनको पैदा करने की साधन धर्म हीन विद्याको पानेमें विद्यार्थी की शोभा नहीं है। गृहस्थी की प्रतिष्ठा आब्रह्मस्तम्ब पर्यन्त सब जीवोंकी तृप्ति, देवता और अतिथियों का पूजन, पञ्चयज्ञका अनुष्ठान, कुटुम्बका पालन और पिण्डदानकी रक्षार्थ सन्तान उत्पन्न करनेमें है, किन्तु कामवासनाको चरितार्थ करनेमात्रकी इच्छासे स्त्रीसहवास करनेमें गृहस्थीकी कुछ प्रतिष्ठा नहीं है, फिर जो गृहस्थी वेश्यालम्पटता करते हैं उनको तो नारकीय कीड़ेके सिवाय और कहा ही क्या जाय ?। स्त्रीकी प्रतिष्ठा—पति-व्रतपालन, पतिसेवा और पतिको ही सर्वस्व माननेमें है, न कि भोग-विलास में। पतिकी प्रतिष्ठा-स्त्रीके भरण पोषण, सबप्रकारसे उसको घरकी लक्ष्मी मानने और उसको सन्तुष्ट रखनेमें है; न कि—काम चेष्टाको पूरी करनेमें। माता पिताकी प्रतिष्ठा अपने सुखपर ध्यान न देकर सन्तानका पालन करने और सन्तानको धर्मशिक्षा देने में है न कि सन्तानको धन पैदा करनेका यन्त्ररूप और भोगविलासकी मूर्त्ति बनानेमें। जो अपनी सन्तान को धर्मशिक्षा न देकर लाड़ चाड़में ही खाने पहरनेका शौकीन बनादेते हैं वे उसके लिये इस लोकमें काँटे होजाते हैं और परलोक में जानेके लिये नरकका मार्ग बताजाते हैं ईश्वर करे ऐसे माता पिता किसीके न हों। सन्तानकी प्रतिष्ठा प्राणपणसे जीवित माता पिताकी सेवा करनेमें और मरणके अनन्तर श्राद्ध आदि वैदिक कर्म करनेमें है, न कि—विषयोंके भोगसुख में।

इसप्रकार आप संयममें रहकर त्यागी बनकर और अनुचित विषय-भोगसे बचे रहकर दूसरोंके सुख शान्तिकी व्यवस्था करनेमें हरएकवर्ण और समाजकी तथा समाजीके प्रत्येक अङ्गोंकी प्रतिष्ठा और सम्पत्तिकी उन्नतिके दृष्टान्त मिलेंगे और वर्णाश्रमोंके प्रत्येक विभागोंमें इसप्रकार का उपदेश देने पर वही पुराना आचार व्यवहार और कर्मानुष्ठान देख-नेमें आने लगेगा। किसीप्रकारके भोगविलाससे किसी भी वर्ण या समा-जके किसी भी अङ्गकी प्रतिष्ठा हुई हो, ऐसा दृष्टान्त या आदर्श हिन्दू शास्त्रमें कहीं भी नहीं मिलेगा हिन्दू आदर्श और पश्चिमी आदर्शमें यही भेद है। इसप्रकार हिन्दू चातुर्वर्ण्यसमाजमें ऐसे किसी श्रेणीके लोग मुफ्त नहीं हैं. कि—जो अपनी भोगवासनाको तृप्त करनेके लिये ए

समाजमें हो तथा हिन्दूशास्त्रमें भी ऐसे किसी आचार रीति या व्यवसायका उपदेश नहीं है, कि—जो केवल अपने भोगविलास और स्वार्थको पूरा करनेके लिये ही रचित या प्रचलित किया गया हो। वर्णाश्रम धर्ममें जहाँ भोगके या प्रवृत्तिके मार्गमें भ्रमणका उपदेश है वह भी देखाजाय तो केवल वासनाकी निवृत्ति और निवृत्तिमार्गमें मोक्षप्राप्तिके मार्गको स्वच्छ करनेके लिये ही रक्खागया है। हिन्दू शास्त्र और हिन्दूसमाजकी नस २ में इस मूलतत्त्वकी छाया पड़ी हुई है।

इस मूलतत्त्वको समझलेने पर सहजमें ही मालूम होजायगा कि किसकारणसे वर्णाश्रमसमाजमें ब्राह्मणोंका ऐसा अटल प्राधान्य और प्रभाव बराबर चला आरहा है। ब्राह्मण ही इस मूलतत्वकी उज्ज्वल मूर्त्तिरूप थे। ब्राह्मणोंमें ही इस मूलतत्त्वका पूर्णविकाश देखनेमें आता था। ब्राह्मण ही जन्मसे लेकर दशप्रकार के संस्कारोंसे पवित्र शरीर होकर बालकपनमें कठोर ब्रह्मचर्यके द्वारा सुरक्षितवीर्य कुशाग्रबुद्धि और जितेन्द्रिय होकर वेदवेदाङ्गादिमें पारदर्शी होकर विषयभोगकी अभिलाषाको त्यागतेहुए असन्दिग्ध और विशुद्ध ब्रह्मज्ञानके अधिकारी होते थे तथा अपने छः कर्मोंका अनुष्ठान करके हिन्दूसमाज में उच्चश्रेणीकी पवित्र ज्ञानसम्पदाको फैलाते थे और यज्ञयाग आदि के द्वारा देवताओंको सन्तुष्ट करतेहुए चारों वर्णोंका मंगलसाधन करते थे। इसकारण चारों वर्णोंके मनुष्य ब्राह्मणोंको जीवनदृष्टिका सर्वोत्तम आदर्शरूप देखकर सब ही बातोंमें उन ब्राह्मणोंके अनुगामी हो सेवा करनेमें तत्पर रहते थे। यह बात सबोंमें स्वाभाविक और समाजके प्रत्येक पुरुषको मंगलदायक थी। इसप्रकार ब्राह्मणों के अनुगामी होनेके कारणसे ही चातुर्वर्ण्यसमाज और वर्णाश्रमधर्म एक समय भारतवर्षमें, कठोर तपस्यासे प्राप्त होनेयोग्य नानाप्रकार के आध्यात्मिक ऐश्वर्यके गौरवको पानेमें और भोग्यपदार्थोंकी भी अतुल सम्पदाको फैलानेमें भूतल पर उन्नतिकी अन्तिम सीमाको प्राप्त एक परमचमत्कारमय आदर्शकी प्रतिष्ठा पानेको समर्थ हुआ था। इसका मूलकारण ब्राह्मण ही थे, ब्राह्मणोंका आदर्श ही सर्वोका

गया था, इसकारण ही भारतके चातुर्वर्ण्यसमाजमें ब्राह्मणोंका अटल प्रभाव जमा हुआ था।

आजकल पश्चिमी शिक्षा और पश्चिमी सभ्यताके फैलनेसे इस देशमें भोगके आदर्शको प्रधानता मिली है, आजकल लोग भोगको ही जीवनका उद्देश्य गिनने लगे हैं, इसलिये भोगाकांक्षाने ही हिन्दूसमाजके प्रत्येक अङ्गको जकड़लिया है, इसकारण ही इस समय चारों वर्णोंमें प्राचीन रीति, नीति, आचार, विचार और कर्मानुष्ठान की कुछ प्रतिष्ठा नहीं है, इसीसे उन सब बातोंका अनादर है और सब ही उधरसे उदासीन हैं। जैसे अनेकों छोटे बड़े, पुरजोंवाला कोई बड़ाभारी वैज्ञानिक यन्त्र, एक स्क्रूके ढीले पड़जानेसे शिथिल और काम देनेमें असमर्थ होकर निकम्मा होजाता है, वही दशा आजकल हिन्दूसमाज की है। अन्य सब अङ्ग प्रत्यङ्गोंमें स्वस्थता होने पर भी मूल आधारमें शिथिलता आते ही समस्त समाज शिथिल और कार्यकारिणी शक्तिसे शून्य होगया है। क्रम २से पश्चिमी आदर्श का सोता ऐसे प्रबल वेगसे बहनेलगा है, कि—इस जातिको प्रतिष्ठा देनेवाले पुराने आदर्शके हरएक अङ्ग प्रत्यङ्गमें शिथिलता आगई। यद्यपि विषयभोगमें अनुकूल पड़नेवाला पश्चिमी आदर्श इस चातुर्वर्ण्य हिन्दूसमाज को कभी भी वास्तविक सुख—शान्ति नहीं देसकेगी तथापि इसके संघर्षसे धीरे २ चारोंवर्ण और उनके वर्णाश्रम धर्मका विनाश अवश्य ही होजायगा। यदि अब भी प्राचीन आदर्श भारतवर्षके स्वाभाविक आदर्श, भारतके भारतीयपनकी रक्षाके और भारतकी जातीयताकी रक्षाके आदर्शकी रक्षाकी ओर ध्यान दियाजाय तो अधिक यत्न और चेष्टा नहीं करनी पड़ेगी।

भूतलपर यह कोई भी नहीं चाहता, कि—मेरी जातिका विध्वंस होजाय, अत्यन्त असभ्यजातियें भी अपने अस्तित्व और अपनी विशेषताको बनाये रखना चाहती हैं तथा इसके लिये तन मनसे उद्योग करती हैं। जिनका चिरकाल अन्धकारमय बीता है वह भी अपनी जातिमें प्रकाश डालना चाहते हैं, अपनी जातिके प्राचीन गौरवको चमकाना चाहते हैं और अपने प्राचीन गौरवके साथ वर्त्तमान जीवन को बाँधकर सृष्टिमें अपनी जातिके अस्तित्व और विशेषत्वकी रक्षा

करना चाहते हैं, विशेषताके साथ ही भगवान् इस विचित्र सृष्टिकी रक्षा करना चाहते हैं, इसकारण भगवान्ने प्रत्येक जातिके लिये एक २ विशेषधर्म नियत करदिया है, इसलिये जिनको अपनी जाति की रक्षा करनी है उनको अपनी जातिके विशेषधर्मकी रक्षा अवश्य ही करनी चाहिये ।। मनुष्योंकी मनुष्योंके समाजकी विचित्रता बड़ी ही श्रेष्ठ वस्तु है, इसलिये उस विचित्रताकी रक्षा करना मनुष्यमात्रका धर्म है। पृथ्वीकी सब ही जातियें इस बातको जानती हैं और अपनी २ विशेषता या जातीयविचित्रताकी रक्षा करनेका सब प्रकारसे यत्न करती हैं ।

ब्राह्मणोंने जो जातिकी चतुर्वर्णसमाजकी और वर्णाश्रमधर्म की प्रतिष्ठा की है, उससे बढ़कर धर्मका आदर्श आजतक भूमण्डल पर कहीं भी देखने में नहीं आया। ब्राह्मणों का भूतकाल जैसा उज्वल पवित्र और सबप्रकार से गौरवमय बीता है, पृथ्वीपर ऐसा सौभाग्य और किसीभी जातिको प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे पवित्र अतीत गौरवकी रक्षा करनेमें महान् मङ्गल होगा, इसकारण उसकी रक्षा सब लोगोंको और विशेष कर ब्राह्मणोंको अवश्य करनी चाहिये। पहिले भी इस अनुष्ठानके व्रती ब्राह्मण ही थे और अब भी इसकी रक्षाका भार ब्राह्मणोंको ही उठाना होगा, चाहे कितने ही गिरगए हैं तो भी ब्राह्मणोंमें अभी ऐसे माईके लाल मिलसकते हैं जो इस कार्यको पूर्ण करसकेंगे।

देवोत्तर सम्पत्ति और उसका दुरुपयोग

—:oo:—

हिन्दू जाति धर्म—प्रधान जाति है उसके सभी काव्य समाि तथा व्यवहारिक—धर्म से सम्बन्ध रखते हैं। खाना, पीना, उठ बैठना प्रभृति नित्य क्रिया, धार्मिक पर्व त्यौहार, विवाह उपनयन प्र रीति रस्म सबधर्मके ही अन्तर्गत हैं। रहा परोपकार यह तो सब- धर्म का मुख्य अंग ही माना गया है। अपनी इस गिरी हुई दशामें भी हिन्दू जाति परोपकार के लिये जितना स्वार्थत्याग करती है उतना दूसरी कोई जाति नहीं करतीहै। दरिद्र से दरिद्र हिन्दू भी अपने

उपार्जित धन का कुछ अंश किसी न किसी रूप से परोपकार के कामों में अवश्यही व्यय करता है। आज जो देशमें इतने देवालय, मठ तथा मन्दिर दीख पड़ते हैं, तीर्थ तथा ग्रामों में सदाव्रत बांटे जाते हैं वे इसी प्रकारके परोपकारके फल हैं।

बहुधा देखने में आताहै कि धनी लोग अपने धन का कुछ अंश अपनी जायदाद से अलग करके देवता के नाम पर चढ़ा देते हैं। ऐसे दान का, आरम्भ में यही उद्देश्य रहता था कि उसकी आमदनी से सच्चरित्र साधु सज्जन दीन दरिद्रोंकी सहायता तथा विद्या और धर्म की उन्नति की जाय। धीरे २ यह एक चालसी चल पड़ी लोग अपनी कीर्त्ति को चिरस्थायी बनाने के लिये देवालय तथा मन्दिर प्रभृति स्थापित करना ही एक मात्र उपाय समझने लगे फलतः बड़े२ मठ और स्थलों की गद्दियां स्थापित होगईं। आरम्भमें इन मठ तथा गद्दियों के अध्यक्ष साधु बड़े ही निस्पृह, निर्लोभ, दयालु, परोपकारनिरत, शान्त तथा ज्ञानी होते थे। उन के अपूर्व गुणों तथा माहात्म्य को देख कर सर्वसाधारण अपनी उपार्जित सम्पत्ति का कुछ अंश इन साधुओं को अर्पण करने लगे। बुन्दबुन्द से तालाब भरता है। थोड़ा २ करके जमा होने से ही मन्दिरों की नियत आमदनी बहुत बढ़ गई। लाखोंलाख रुपये की सम्पत्तिवाले न मालूम कितने ही स्थान देश में वर्त्तमान हैं।

अच्छे से अच्छे कार्य्य में भी समय के फेर से कुछ न कुछ कुरीति आही जाती है। फलतः इन स्थानों की स्थापना जिस पवित्र उद्देश्य से हुई थी वह आज नहीं रहा। काल के धर्म से उस में दीमक लग गई। रुपये के मद ने उन त्यागी विरक्त साधुओं में बहुतसों को पेयाश और अपने धर्म में अन्धा बना दिया। मठ और स्थान जो पहले परम पुनीत माने जाते थे, वे बहुधा अब सब प्रकार की बुराइयों के घर बन गए हैं। लोगों की आंखों में ये स्थान और उन के कुमार्गी स्वामी कांटे की तरह गड़ते हैं। इन के सुधारकी ओर ध्यान देना [illegible] हो गया है। ये स्थल किसी व्यक्ति [illegible] सर्वसाधारण के धन से [illegible] न का यहस्थान

उद्देश्य है। गँजेड़ी भङ्गड़ी तथा व्यभिचारियों के खाने पीने तथा लुटाने के लिये वे नहीं हैं। परन्तु आजकल इन स्थानों का भार ऐसे ही महन्तों के हाथ में है जिन में अधिकांश विद्या और धर्म के कट्टर शत्रु हो रहे हैं। वे अपने कर्त्तव्यका कुछ भी विचार नहीं रखते। दिन रात राजसी ठाट और भोग विलास में मग्न रहना ही वे महन्ती समझते हैं। यह नहीं विचारते कि महन्त होना क्या है, धर्म का नेता बनना है जो बड़ी जिम्मेवारी, बुद्धि विद्या और धर्मसत्ताका काम है।

भारत सरकार की यह नीति है कि वह अपनी प्रजा के धार्मिक बातों में हस्ताक्षेप नहीं करती। यह एक बहुत ही उत्तम और प्रशंसनीय नीति है। सन् १८६३ ई० में रिलीजस इण्डोमेंण्ट ऐक्ट नाम का जो कानून पास हुआ था उस से भी सरकार की इस नीति की पुष्टि होती है। हम भी चाहते हैं कि सरकार हमारी धर्म सम्बन्धी बातों में हस्ताक्षेप न करे। किन्तु क्या हो। ये मठाधीश देवोत्तर सम्पत्तियों के प्रबन्धकर्त्ता महन्त लोग समझते हैं कि किसी को हमारे कामोंमें कुछ बोलने का अधिकार ही नहीं है, फलतः वे स्वच्छन्द और निरंकुश बन गये हैं।

जब उनका यह आचरण लोगों को खटकने लगा तो समय२ पर देश के नेताओं ने कानून द्वारा उन के सुधार का उपाय करना चाहा सन् १८६७ ई० में आनन्द चार्लु ने, सन् १६०३ में मि० श्रीनिवास राव ने और सन् १६०८ में डा० रासबिहारी घोष ने इस कानून का मसविदा सरकारी कौंसिल में उपस्थित किया। किन्तु सरकार ने अपनी उक्त नीतिको ही स्थिर रक्खा। परन्तु इधर आकर अब स्थान के स्वामियों के विरुद्ध लोकमत बहुत प्रबल हो गया है। बम्बई तथा मद्रास की प्रान्तीय व्यवस्थापक सभाओंमें कई गैर सरकारी मेम्बरों ने हालमें इस विषयमें कानून संशोधन करनेका प्रस्ताव उपस्थित किया है। बात यहां तक बढ़ गई है कि भारत सरकार ने फिर उस विषय को हस्तगत किया है। सरकार ने इस सम्बन्धमें एक सार्वजनिक सूचनापत्र प्रकाशित किया है जिस में यह कहा गया है कि इस विषय पर विचार करने के लिये भिन्न २ प्रान्तोंके उपयुक्त प्रतिनिधियों की एक कान्फरेन्स इस मास के अन्तिम सप्ताह में बैठेगी।

कान्फरेन्स तो अब बैठेगी ही इस में सन्देह नहीं। देखें बस का क्या सिद्धान्त होता है। परन्तु महन्तों को शीघ्र चेतना चाहिये। यदि महन्त लोग उचित रीति से अपना कर्तव्य पालन करते रहते तो उन के ऊपर कोई क्यों शासन लाता। वे तो खुद ही धर्माचार्य की गद्दी पाने के कारण दूसरों के पूज्य शासक रहते। धार्मिक जगत् के लिये यही ही कठिन समस्या उपस्थित है। फिर भी साधु समाज सच्चे महात्माओं से खाली नहीं है। उन महात्माओं को इस समय अपने विचार प्रकट करने चाहियें। (मिथिलामिहिर)

—•—

प्रेरित समाचार।

(हरद्वार) शहर अमृतसर के धर्मात्मा सज्जन लाला फग्गूमल सन्तरामजी ने ७ गौ और एक सांड ऋषिकुल ब्रह्मचारीआश्रम को प्रदान किया है। गौ एक से एक बढ़कर है सांड भी बढ़िया नसल का है इससे आश्रमका वह कष्ट जो बाहरसे दुग्ध खरीदनेमें होता था दूर होगया उक्त लालाजी ने मानो आश्रम में दुग्ध की नदी बहादी आशा है अन्य सज्जन भी आपका अनुकरण करेंगे। वर्त्तमानमें गौओंके लिए एक टीन का छप्पर है। यदि कोई धर्मात्मा सज्जन इधर ध्यान दें तो शीघ्र ही उसके स्थान में सुन्दर गौशाला बनसकती है।

ब्रह्मचारियों का स्वास्थ्य उत्तम है कलकत्ता सिंध तथा अमृतसर को [illegible]रसे स्थान धड़ाधड़ निर्माण हो रहे हैं शीघ्र ही पाठशाला के स्थान [illegible] अभाव दूर होकर ब्रह्मचारियों के पढने तथा रहने के स्थान का [illegible]ति प्रबन्ध होजावेगा। आशा है आगामी उत्सव तक सब स्थान [illegible]यार होजायंगे।

केदारनाथ सहकारी मंत्री

(गाज़ीपुर)—महान् हर्षका अवसर है कि श्री सनातनधर्म ऋषि कुल ब्रह्मचर्याश्रम गाज़ीपुर का वार्षिकमहोत्सव जिसके साथ २ श्री सनातनधर्मीय युवकसम्मेलन तथा श्री सनातनधर्मपुस्तकालय के भी वार्षिकोत्सव सम्मिलित थे, बड़े उत्साह व समारोह के साथ

ता० ३१ जनवरी से २ फरवरी सन् १६१४ ई० तक थी चा० शिव सहाय जीके फाटक में हुआ प्रथम दो दिन श्रीमान् बा०गोविन्दनारा यणसिंहजी रईस व आनरेरीमजिस्ट्रेट तथा तीसरे दिन श्रीमान बा० गौतमप्रसादजी सभापति के शासनपर सुशोभित थे। प्रथम दिवस प्रातःकाल ८ बजे से १२ बजे दिन तक श्रीवेदभगवान् तथा सरस्वती देवीका पूजन और हवन हुआ तत्पश्चात् सन्ध्यासमय ३ बजे से ६ बजे राततक तथा इसी समय पश्चात्के दो दिन महोपदेशकों के व्याख्यान और भजन हुए इस शुभ अवसर पर श्रीयुत कूर्माचल भूषण पं० दुर्गादत्तजी पन्त, पं०कालूराम जी शास्त्री, पं०रलियारामजी शर्मा पं० मदनमोहनजी भार्गव पं० हनुमानदत्तजी तथा शिवगोविन्द जी आदि महापदेशक पधारे थे इन महोपदेशकोंके व्याख्यान धर्म, पुराण, अवतार, मूर्तिपूजा श्राद्ध, भक्ति, ब्रह्मचर्य्य, सनातनधर्मका गौरव, विधवाविवाहनिषेध तथा नियोगखण्डन सम्बन्धी विषयों पर बड़े ही ललित; उपदेशजनक और प्रभावशाली हुए। प्रत्येक दिवस सभामण्डप श्रोताओं से ठसाठस भरा रहता था। सर्व धर्मावलम्बी सज्जन प्रतिदिन एकत्रित होते थे सभामण्डप बीच बीच में श्रोताओं के करतलध्वनिसे गूंज उठता था और चहुँओर से जै सनातनधर्मके शब्द सुनाई देते थे।दूसरे दिन श्रीमान् जिलाधीश मिस्टर टी. डबल्यू, मारिस श्रीमान् बा० रामप्रसाद लालजी जिला जज मिस्टर मेजर वेल्स सिविलसर्जन तथा और अन्य अंगरेज महानुभाव भी पधारे थे। तीन ब्रह्मचारियों ने उठ कर श्रीमान् जिलाधीश को स्वस्तिवाचन करके पुष्पाञ्जलि दी जिसको श्रीमान् ने अपने करकमलों में ले बड़ी ही प्रसन्नता प्रकट की श्रीमान् डिप्टीकलक्टर महानुभाव तहसील दार तथा शहरकोतवाल इत्यादि महोदय प्रायः प्रतिदिन पधारने की कृपा करते थे।

दूसरे दिन शंका समाधान का समय निश्चित किया था पर कोई भी महाशय शंका करने के लिये उपस्थित नहीं हुये अन्तिम दिवस पं०दुर्गादत्तजी पन्त ने ऋषिकुल की ओर से अपील की जिसमयं बा० गौतमप्रसादजीने १०) मासिक चन्दा देना स्वीकार किया और एकवर्षका चन्दा १२०) उसी समय अर्पण कर दिया और इतना बड़ा

मकान को कलक्टर घाट पर स्थित है बिना भेराया ब्रह्मचारियों के रहने के लिये देना स्वीकार किया क्यों न हो धनवानों में ऐसा ही होना योग्य है। इसके अतिरिक्त (७/) और नकद चन्दा सर्वसाधारण से मिला। स्थानीय उदार और दानवीर मारवाड़ियों ने भी बड़ी उदारता और सहानुभूति से ऋषिकुल को सहायता पहुंचाना निश्चित किया। सत्य है! इस जाति ने जैसा व्यवसाय को प्रधान माना है वैसी दान वीरता भी इनमें टपकती है अन्तमें श्रीयुत कुमार-भूषणजी ने सर्वसाधारण के सन्मुख ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम सनातनधर्मसभा तथा सनातनधर्मपुस्तकालय को सम्मिलित कर श्री सनातनधर्म ऋषिकुल सभाके नाममें जिसके अन्तर्गत ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम तथा सनातनधर्म पुस्तकालय रहै परिणत करने का प्रस्ताव किया जिसका अनुमोदन सर्वसाधारण की करतलध्वनि से किया गया और इस सभाके श्री युत बा० बजरंगीलाल जी वकील, बी. ए. एल. एल. बी. व म्युनिसिपल कमिश्नर सभापति बा० गौतम-प्रसादजी उपसभापति, पांडे राजधारीलाल जी, रईस व मेम्बर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड मेनेजर पं० श्रीनाथतिवारी सेक्रेटरी बा० शुकदेव-प्रसाद जी मारवाड़ी कोषाध्यक्ष तथा बा० गजानन्द जी मारवाड़ी सहकारी मंत्री सर्वसाधारण के करतल ध्वनि के अनुमोदन से चुने गये। अन्तमें श्रीमान् महाराजाधिराज पंचम जार्ज तथा महारानी मेरी को धन्यवाद देते हुए सभा विसर्जित हुई। चौथे दिन सन्ध्या समय साढ़े चार बजे श्रीसरस्वती देवी सिंहासन सहित श्री बा० शिवसहायजी के फाटक से उठकर मार्गमें श्रीयुत प० हनुमानदत्तजी का व्याख्यान होता हुआ कलक्टर घाट पर विसर्जित हुई।

श्रीनाथतिवारी मंत्री

(अलीगढ़) दयानन्द समाजके सात दिन अधिवेशनमें तारीख २३ सितम्बरको बड़ीभारी समुदाके साथ [illegible] कहा कि "वेदमें श्राद्ध शब्द तक नहीं है, यदि कोई मुझे दिखादेगे मैं [illegible] देनेको तयार हूँ" [illegible] [illegible] लोग केवल [illegible] ही [illegible] पं० [illegible] [illegible]

ता० ३१ जनवरी से २ फरवरी सन् १६१४ ई० तक थी वा० शिव सहाय जीके फाटक में हुआ प्रथम दो दिन श्रीमान् या०गोबिन्दनारायणसिंहजी रईस व आनरेरीमजिस्ट्रेट तथा तीसरे दिन श्रीमान बा० गौतमप्रसादजी सभापति के आसनपर सुशोभित थे। प्रथम दिवस प्रातःकाल ८ बजे से १२ बजे दिन तक श्रीवेदभगवान् तथा सरस्वती देवीका पूजन और हवन हुआ तत्पश्चात् सन्ध्यासमय ३ बजे से ६ बजे राततक तथा इसी समय पश्चात्के दो दिन महोपदेशकों के व्याख्यान और भजन हुए इस शुभ अवसर पर श्रीयुत कूर्माचल भूषण पं० दुर्गादत्तजी पन्त, पं०कालूराम जी शास्त्री, पं०रलियारामजी शर्मा पं० मदनमोहनजी भार्गव पं० हनुमानदत्तजी तथा शिवगोविन्द जी आदि महापदेशक पधारे थे इन महोपदेशकोंके व्याख्यान धर्म, पुराण, अवतार, मूर्तिपूजा श्राद्ध, भक्ति, ब्रह्मचर्य्य, सनातनधर्मका गौरव, विधवाविवाहनिषेध तथ नियोगखण्डन सम्बन्धी विषयों पर बड़े ही ललित; उपदेशजनक और प्रभावशाली हुए। प्रत्येक दिवस सभामण्डप श्रोताओं से ठसाठस भरा रहता था। सर्व धर्मावलम्बी सज्जन प्रतिदिन एकत्रित होते थे सभामण्डप बीच बीच में श्रोताओं के करतलध्वनिसे गूंज उठता था और चहुँओर से जै सनातनधर्मके शब्द सुनाई देते थे।दूसरे दिन श्रीमान् जिलाधीश मिस्टर टी. डबल्यू, मारिस श्रीमान् या० रामप्रसाद लालजी जिला जज मिस्टर मेजर वेल्स सिविलसर्जन तथा और अन्य अंगरेज महानुभाव भी पधारे थे। तीन ब्रह्मचारियों ने उठकर श्रीमान् जिलाधीशको स्वस्तिवाचन करके पुष्पाञ्जलि दी जिसको श्रीमान् ने अपने करकमलों में ले बड़ी ही प्रसन्नता प्रकट की श्रीमान् डिप्टीकलक्टर महानुभाव तहसील दार तथा शहरकोतवाल इत्यादि महोदय प्रायः प्रतिदिन पधारने की कृपा करते थे।

दूसरे दिन शंका समाधान का समय निश्चित किया था पर कोई भी महाशय शंका करने के लिये उपस्थित नहीं हुये अन्तिम दिवस प०दुर्गादत्तजी पन्त ने गुरुकुल का ओर से अपील की जिससमय बा० गौतमप्रसादजीने १०) मासिक चन्दा देना स्वीकार किया और एकवर्षका चन्दा १२०) उसी समय अर्पण कर दिया और इतना कहा

मकान जो कलक्टर घाट पर स्थित है बिना भेराया ब्रह्मचारियों के रहने के लिये देना स्वीकार किया क्यों न हो धनवानों में ऐसा ही होना योग्य है। इसके अतिरिक्त १७1) और नक़द चन्दा सर्वसाधारण से मिला। स्थानीय उदार और दानवीर मारवाड़ियों ने भी बड़ी उदारता और सहानुभूति से ऋषिकुल को सहायता पहुँचाना निश्चित किया। सत्य है! इस जाति ने जैसा व्यवसाय को प्रधान माना है वैसी दान वीरता भी इनमें टपकती है अन्तमें श्रीयुत कुम्भी-ब्रह्मभूषणजी ने सर्वसाधारण के सन्मुख ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम सनातनधर्मसभा तथा सनातनधर्मपुस्तकालय को सम्मिलित कर श्री सनातनधर्म ऋषिकुल सभाके नाममें जिसके अन्तर्गत ऋषिकुल ब्रह्मचर्याश्रम तथा सनातनधर्म पुस्तकालय रहै परिणत करने का प्रस्ताव किया जिसका अनुमोदन सर्वसाधारण की करतालध्वनि से किया गया और इस सभाके श्री युत बा० बजरंगीलाल जी वकील, बी. ए. एल. एल. बी. व म्युनिस्पल कमिश्नर सभापति बा०गौतमप्रसादजी उपसभापति, पांडे राजधारीलाल जी, रईस व मेम्बर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड मैनेजर पं० श्रीनाथतिवारी सेक्रेटरी बा० शुकदेवप्रसाद जी मारवाड़ी कोशाध्यक्ष तथा बा० गजानन्द जी मारवाड़ी सहकारी मंत्री सर्वसाधारणके करतल ध्वनि के अनुमोदन से चुने गये। अन्तमें श्रीमान् महाराजाधिराज पंचम जार्ज तथा महारानी मेरी को धन्यवाद देते हुए सभा विसर्जित हुई। चौथे दिन सन्ध्या समय साढ़े चार बजे श्रीसरस्वती देवी सिंहासन सहित श्री बा० शिवसहायजीके फाटक से उठकर मार्गमें श्रीयुत प० हनुमानदत्तजी का व्याख्यान होता हुआ कलक्टर घाट पर विसर्जित हुईं।

श्रीनाथतिवारी मंत्री

(अलीगढ़) दयानन्द समाजके सातादिन अधिवेशनमें तारीख २३ मिनम्बरको बड़ीभारी भड़कके साथ सच्चिदानन्दने यहांतक पद हाकि "वेदमें श्राद्ध शब्द तक नहीं है यदि कोई मुझे दिखादे तो मैं देनेको यहां पुरस्कार तयार हूँ" अब अंक को इस [illegible] और दया- नन्दी लोग केवल झोंदिनी निर्णय ही [illegible] दया-नन्दी पं० अखिलानन्द आदम्भ [illegible] [illegible]

तो वर्तमान आर्य्यसमाजियों से यह पूछते हैं कि क्यो तुम लोग पं० अखिलानन्द के कथनको सत्य मानतेहो या दयानन्दजी के लेखको ? अलीगढ़ के एक सनातनधर्म्मी पं०लक्ष्मीनारायण ने जवाबी रजिस्ट्री पत्र १३—१०—१३ को भेजा था जिसकी नकल यह है—

श्रीमान् पंडित अखिलानन्दजी नमस्कार आगे निवेदन यह है कि ता० २३ सितम्बर को आपने यह चेलेञ्ज दिया था कि मुझे वेद में अगर कोई श्राद्ध शब्द दिखलादे तो मैं रेलका घंटा पूजने को तयार हूँ और साथ ही यह भी कहाथा कि मरे और जिन्देका फैसला पीछे होगा आपका यह श्राद्ध विषयपर चेलेञ्ज था अगर आप श्राद्ध शब्दको वेदमे देखना चाहे तो मुझे स्वामी दयानन्दकी बनाई हुई संस्कार विधी में जो १६ संस्कार लिखे हैं आप एक २ वेदका मंत्र लेकर एक २ संस्कार को मिलादीजियेगा (पत्रद्वारा) और साथ ही आप इस बातका भी फैसला करलें कि मेरा कहना सही या स्वामीजीका लेख सही आपके कहनेसे मालूम होता है कि स्वामीजीने जो श्राद्ध लिखा है वो भी वेद विरुद्ध लिखा है वास्तवमें जो स्वामीका लेखहै कि जिन्दोंका श्राद्ध करो यह वेद विरुद्धही है जिन्दे पितरों का श्राद्ध नहीं होता मरे पितरोंका ही होताहै अथर्व वेदमें लिखाहै "ये निखाता ये परोप्ता ये दग्धा ये चोद्धताः सर्वांस्तानग्न आवह पितृन्हविषे अत्तवे"।अ० का० १८ मं०२ मं० ३४ यजुर्वेदमें भी लिखा है 'ये चेह पितरो ये च नेह यांश्च विद्म यांश्च न प्रविद्म त्वं वेत्थ यतिते जातवेदः स्वधाभिर्यज्ञँ सुकृतञ्जुषस्व। यजु० १६। ६।७ उश-न्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि उशन्नुशत आवह पितृन्हविषे अत्तवे ॥ यजु० १६।७० अथर्ववेद में भी लिखा है कि–ये अग्निदग्धा अनग्नि-दग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते। त्वं तान्वेत्थ यतिते जातवेदः स्वधया यज्ञं स्वधितिं जुषन्ताम् किसके जीवित पितर अग्निमेंजलाये गये ? यजुर्वेदमें लिखा है—

यमग्ने कव्यवाहन त्वञ्चिन्मन्यसे रयिम् तन्नो गीर्भिः श्रवाय्यन्देवत्रा-पनयोयुजम्। यजु० १६। ६४

मेरी शंका यह है-स्वामीजीने जो सत्यार्थप्रकाशमें तर्पण लिखा है वो जीवित पितरोंका या मरे पितरों का और महादयो देवा-

स्तुप्यन्ताम् से लेकर जो स्वामी जीने तर्पण लिखा है उस का आप छपाकर मुझे अर्थ लिखकर भेज दीजियेगा पत्र द्वारा । शतपथमें भी लिखा है ' दक्षिणामवरको वैपितृलोकः' जिन्हें भी पितरपितृलोक में रहतेहैं स्वामी दयानन्दकी जो बनाई हुई संस्कारविधि है उसमें स्वामीजी ने लिखाहै कि " दक्षिण की तरफ मुख करके अपसव्य हो हाथमें जल लेकर" श्री पितरः शुन्धध्वम् इस को पढ़ कर जल पृथ्वीमें छोड़दे आपका ईश्वर निराकार है तो आप को पत्र द्वारा उत्तर देना होगा और साबित करना होगा ईश्वर निरा-कारहै।इसर पंद्रह दिन के अंदर आना चाहिये-जरूर २ उत्तर देना उक्त पत्रमें जो प्रश्न और शंकाएं दयानन्द रचित ग्रन्थानुसार कीगई थी उनके उत्तर पत्र पहुँचने पर १५ दिन तक देनेकी बात थी पर आज करीब चार महीने होनेको होआये कुछ भी उत्तर नहीं आया अब सर्वसाधारण दयानन्दी अखिलानन्दकी गप्पों और चालाकियों को जान जायंगे और उनको उत्तर देनेकी असमर्थता प्रकट होने से पूरी २ पराजय हुई इसमें रञ्चक भी सन्देह नहीं है ।

ज्योतिस्वरूप शर्मा मंत्री श्रीसनातनधर्मसभा अलीगढ़

दयानन्दियों का शास्त्रार्थ से मुँह छिपाना ।

श्री सनातनधर्म सभा अलीगढ़ में पोष शुक्ल १०मी से पूर्णिमा पर्यन्त सनातनधर्म के मण्डन और दयानन्दमत खण्डन पर कई विद्वानों के बड़े ही प्रबल प्रभावोत्पादक व्याख्यान हुए । श्रीमान् पं०ताराचन्द्रजी शास्त्री की संस्कृत वक्तृता और उसका भाषानुवाद सुनाया । आपने दयानन्दजी के अनर्गल वेद भाष्य की अयुक्तता निरुक्त और व्याकरण आदि से दिखाई । मूर्त्तिपूजा की वास्तविकता विधवाविवाह तथा नियोग की असम्भवता,मुक्तिसे पुनरावृत्ति का प्रतिवाद वेद शास्त्र स्मृति के प्रमाणों और प्रबल युक्तियों द्वारा समझा कर सवसाधारण को दयानन्दियों के जालमें फंसने से बचने के लिये सावधान किया । पं० रामगोपाल जी व्यास नागपुर निवासी ने दो दिन भक्ति पर बड़ाही मधुर और शान्तिदायक व्याख्यान दिया साथ ही दयानन्दी मतकी निःसारता भी दिखाई ।

श्रीमान् पं०गंगादेवालालजी शर्मा सनाजी स्वामी दर्शनानन्द के शिष्य

ने सत्यार्थप्रकाश संस्कारविधि और आर्याभिविनय आदि की ऐसी पोल खोली कि सुनने वालोंको दयानन्दीमतसे घृणा होने लगी। सांयहो फलित ज्योतिष की प्रत्यक्ष सिद्धि दयानन्दियों के मूक प्रश्न पहले ही से लिख कर की जिसका बड़ा भारी प्रभाव पड़ा।

समाजियोंने अपने स्वभावानुसार एक दिन शास्त्रीजी के व्याख्यानो के प्रभावको हटाने के लिये एक अंड बंड नोटिस छपा बांट डाला पर जब उनके यहां सुनने तकको कोई न पहुँचा तो सभापति मंत्री आदि धर्म सभा के व्याख्यानों को सुनने आये वहां श्रोताओंके ठट्ठ के ठट्ठ देख भौचक्के रह गए यद्यपि नित्य ही समाजियों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा गया पर किसी की हिम्मत न हुई कि सन्मुख आवे अब यहां के समाजियों की तो चलती नहीं देखें और कहीं से कोई महाशय विचारों की सहायतार्थ आते हैं या नहीं आज नगरमें घर घर सनातनधर्म का जय२कार हो रही है पाठको बोलो एकवार सनातनधर्म की जय।

ज्योतिःस्वरूप शर्मा।

कलकत्ता—श्री सनातनधर्मसंरक्षिणीसभाका प्रथम वार्षिकोत्सव ता० १४,१५ फरवरी सन् १९१४ ई० को १२ नम्बरओल्ड पोस्ट आफिस स्ट्रीट कलकत्ता में बड़े समारोह के साथ हुआ राधागोविन्द तिवारी जी ने सर्व सम्मति से सभापति का आसन ग्रहण किया एंव दो हजार के समीप धर्म प्रेमागण सभामें सम्मिलित हुए थे, सभासदोंमें बहुतसे आर्यसमाजी भाई भी उपस्थित थे उन्होंने भी बहुत प्रसन्नता प्रगट की इसके लिये सभाकी ओरसे उन्हें भी धन्यवाद वितरित कियागया सभाके प्रारम्भमें पं० शिवगोविंद जी द्विवेदी का भजन,विद्या० श्री:१०८पं०श्यामा प्रसाद मिश्रजी,का,व्याख्यान प्रतिमा पूजन पर तथा श्री १०८ पं० भीमसेन शर्मा का मांस भक्षण से हानि, पं० काशीनाथ पाठक का गायत्री मन्त्र पर था, और पं० कृष्णकुमार शर्मा का माता, पिता तथा गौ की [illegible] पर व्याख्यान हुआ व्याख्यान [illegible] और मनोहर [illegible] हुए थे सभापति की आज्ञानुसार [illegible] [illegible] [illegible] लोगोंको दियागया था। रामनाथ शर्मा मंत्री।

(इगलास—अलीगढ़)—धर्म्मसभाका अधिवेशन वसन्त पंचमी से सप्तमी तक बड़ा धूमधामसे हुआ भारतधर्म्म महामण्डलके महोप देशक पं० गङ्गाविष्णु शास्त्री, पं० देवकीनन्दन उपदेशक मैंढ, पं० रामप्रसादके युक्तिपूर्ण मनोहर व्याख्यानों तथा पं० कन्हैयालालजी (जो कुछ वर्ष स्वामी दर्शनानन्दके शिष्य रहचुके हैं और होनहार जोशीले व्याख्याता हैं) के प्रमाण पूर्वक विपक्षियों के खण्डनसे धर्मने धूमधमचाई आर्यसमाजका आसन भी डावांडोल होगया कितने ही समाजी भाई सभामें बोलनेलगे परन्तु उनसे कहदियागया कि हम जो कुछ कहते हैं उसको नोट करते जाओ यदि तुम या तुम्हारा कोई उपदेशक उत्तर देना चाहे तो दो घण्टे में सन्मुख आ जाय अन्यथा समाज की हारमानी जायगी परन्तु किसीने मुँह न दिया था सनातनधर्मकी जय हुई पं० केशवराम मन्त्री सभाका उद्योग तथा सुयोग्य तहसीलदार साहब व सब इन्सपेक्टर साहबका प्रबंध सराहनीय था। प्राणसुखशर्मा इन्स्ट्रेक्टर

(सकलडीहा—बनारस)—स्वा० आत्मानन्द सागर संन्यासीने तीन दिन सनातनहिन्दूधर्म पर व्याख्यान दिये, फिर दोदिन मादी कसबेमें धर्मप्रचार किया, प्रभाव बहुत अच्छा पड़ा गोविन्दराम।

(फूलपुर)—स्वा० मालारामजीके व्याख्यानों को सुनकर श्रोताओं की धर्मपर विशेष रुचिहुई, यहाँकी रानी साहिबा धन्यवादकी पात्र हैं, जिन्होंने गोरक्षिणी सभाको एक सहस्र रुपयादिया और स्थापन के निमित्त भी फीहल चार रुपया गोरक्षिणी सभाकोदेंगे। वृन्दावन वैश्य.

(कानपुर)—यहाँ स्वा० मलारामजीने गोरक्षिणी सभाका निरीक्षण किया, यहाँ प्रतिदिन २० सेर दूध होताहै, परन्तु कानपुर जैसे नगरकी गोशालामें बीस मन दूध हो तो भी थोड़ाहै, दुग्धवती गौओं से ही गोशालाकी उन्नति होसकतीहै, सुना है. कि—कानपुरके मारवाड़ियोंके यहाँ गोशाला सम्बन्धी बहुतसा रुपया जमा है, यदि वे लोग दश सहस्र की गौएं हाँसीहिसारसे मँगालें तो कानपुर की गोभक्त प्रजाको बहुत सस्ता दूध मिलनेलगे, जिससे पारलौकिक पुण्य के साथ २ लौकिक लाभ भी हो अब स्वामीजी सांभर, अजमेर उदयपुर, जोधपुर, सुजानगढ़ आदिकी धर्मसभाओंमें उपदेश देतेहुए मिन्न हैदराबादकी सनातनधर्मसभाके पास वेदान्त सभामें उतरेंगे, यदि दीवान लोगोंकी संमति होगी तो भाई कलशानचन्दके आश्रममें उपदेशदेंगे, इसकी विशेष सूचना दीवान शीतलदास वेदान्ती का होजाती है। गोविन्दराम

(ममरौधा, कानपुर)—प० कालूराम शास्त्री महोपदेशक सनातन धर्म की उन्नति के लिये भारतवर्ष में भ्रमण करेंगे, जिन सभाओंको अपने यहां उपदेश करवाना हो वे मुझे सूचनादें।

छुन्नीलाल महरोत्रा, पो० ममरौधा (कानपुर)।

(रानीका रायपुर)—पौषशुक्ला पञ्चमी से चार दिन तक धर्मसभा में प० गुरुदत्तशर्मा सनातनधर्मोपदेशक और प० हरिनन्दजी ने भक्ति, धर्मरक्षा, कुरीति संशोधन, वर्णव्यवस्था, एकता, गोरक्षा, और देवनागरी के प्रचारपर व्याख्यान दिये, प्रभाव अच्छा पड़ा, श्रोता बहुत इकट्ठे होते थे, ।

शिवरामशर्मा मन्त्री

(राजनपुर, डेरागाजीखां)—खेरपुरनिवासी व्याख्यानभूषण प० वासुदेवजीने मूर्त्तिपूजा, अवतार, श्राद्ध गोरक्षा आदि अनेकों विषयों पर १० दिन तक व्याख्यान दिये, दयानन्दियोंने बहुत हुल्लड़ मचाया परन्तु कोई सामने नहीं आया, प० जीने बार २ सभामें कहदिया, जिसको शङ्का हो, खुले मैदानमें आकर समाधान करले। प० जी के उपदेशका यहां तक असर पड़ा कि—दोसौ मनुष्योंने मांस भक्षण छोड़दिया पठानकोट में भी आपके उपदेशसे सैकड़ों मनुष्योंने मांस भक्षण त्यागदिया।

प० जैसालाल

(बिहार, चम्पारन)—ब्राह्मण महासभाका अधिवेशन सीताकुण्ड बेदीबन मधुबनमें ११।१२।१३ को श्री प० योगेश्वरदत्तजीके सभापतित्वमें हुआ, प० शिवशरण शर्मा काव्यतीर्थ, प० गङ्गाविष्णु शर्मा काव्यतीर्थ और प० नन्दकिशोर उपदेशक महामण्डलके जातीय धर्मोन्नति और विद्योन्नति विषय पर व्याख्यान हुए, जिनको सुनकर श्रोता प्रसन्नहुए २००० दर्शकोंका समारोह होताथा, इस आन्दोलन से गिरीहुई ब्राह्मणजाति के फिर उठखड़ी होनेकी आशा है।

रघुबीर शरण मंत्री.

(सूर्यपुरा, आरा)—ईश्वरकी कृपासे माघ शु० ५ को यहाँ श्रीमान् कुंवर साहबकी ठाकुरबाड़ीमें सनातनधर्मसभा स्थापित हुई है, जिसके सभापति बाबू रामविभूति सिंहजी नियत हुए हैं, सभाका अधिवेशन प्रत्येक एकादशी को होता है।

विन्ध्येश्वरी प्रसाद

स्थानीय समाचार

वसन्तपञ्चमीको, नगरके वैद्योंने मिलकर एक आयुर्वेद विद्यालयकी स्थापना की, प्रारम्भिक कार्यके उपलक्षमें विद्यार्थियोंको उपवीतदीक्षा और सभामें डेढ़सौ सद्गृहस्थोंकी उपस्थितिमें आयुर्वेदके महत्वपर व्याख्यान हुए, सभापति हमारे नगरके प्रतिष्ठित वकील आनरेबुल

श्रीमान् बा० ब्रजनन्दनप्रसादजी आनरेरी मजिस्ट्रेट हुयथे, यद्यपि आरम्भमें सब ही कार्य कृशदशामें होते हैं, परन्तु परमात्माके अनुग्रह और कार्यकर्त्ताओंके सदुद्योगसे इस कार्यमें यदि सफलता प्राप्त हुई तो अवश्य ही हम मुरादाबादनगरका अहोभाग्य समझेंगे, इस सद नुष्ठानके लिये हम वैद्य दुर्गादत्तजी, वैद्य भवानी शङ्करजी, डाक्टर देवेन्द्रमारद्वाजजी और हकीम वैजनाथजी को धन्यवाद देते हैं, काँटके चौधरी धर्म सिंहजीने विद्यालयको पाँच सौरुपयेके अलमँगादेने की प्रतिज्ञा की है।

उसी दिन मकरन्दहिन्दू लाइब्रेरीका तीसरा वार्षिकोत्सव हुआ, बा० ब्रजरत्नजीने इस लाइब्रेरीको स्थापित करके शहर का बड़भारी उपकार किया है, इसका यह तीसरा वार्षिक उत्सव श्रीमान् प० गोविन्द प्रसादजी डिपटी कलक्टर साहब के सभापतित्वमें हुआ था, हम लाइब्रेरीके प्रबन्धकर्त्ताओंसे प्रार्थना करते हैं, कि—वे कुछ हिन्दीके गौरवका भी ध्यान रक्खें, उर्दूबीबीके मोहमें पड़कर हिन्दू और हिन्दी के नामको बट्टा न लगावें, यह सदा ध्यानमें रखने की बातहै

नवीन पुस्तकें और पत्र

अहिंसाप्रदीप—इस पुस्तकको चनयोटनिवासी सनातनधर्मके उपदेशक प० गणेशदत्तशास्त्रीजीने तीन भागोंमें लिखाहै, पहिले भाग में मांसभक्षणका निषेध युक्तियोंसे, दूसरे भागमें शास्त्रके प्रमाणोंसे और तीसरे भागमें दृष्टान्तोंके द्वारा कियाहै,पुस्तकके उद्देश्य की सराहना सब ही लोगों को करनी चाहिये और ऐसे पुस्तकोंका यथा शक्ति प्रचार भी करना चाहिये, छपाई सुन्दर है मूल्य ५ आना कुछ अधिक है, ऐसे पुस्तकोंका प्रचार लागत मात्र लेकर करना चाहिये, मिलनेका पता—प० गणेशदत्तशास्त्री वेदान्त सत्संग, लायलपुर है।

पुराणकलङ्कामार्जन—यह प० कालूरामशास्त्री महोपदेशक का लिखा पुस्तक, धर्मोपदेशक ग्रन्थमालाका नवम उपदेशहै, इसमें शास्त्रीजीने पुराणों के ऊपर विपक्षियोंके किये आक्षेपोंका समाधान किया है, क्राउन १६ पेजी ८१ पृष्ठकी पुस्तक का मूल्य ४ आना मिलनेका पता—प० कालूराम शास्त्री अमौधा (कानपुर) है।

वैराग्यपञ्चकम्—यह वैराग्य विषयके पांच श्लोक श्रीशङ्कराचार्यजीके रचेहुए अनुप्रासमय बड़े ही श्रवणसुख और उपदेशप्रद हैं, जटिल संस्कृत होनेके कारण सर्वसाधारणकी समझमें नहीं आसकते, अतः प० जीवनरामशास्त्री फतेहपुर शेखावाटी निवासीने सरल

संस्कृत में टीकाकरके बड़ा उपकार किया है, उक्त प० जी से आ[illegible]
आनेमें मिलती है।

नार्मदेयब्राह्मणोत्पत्तिः—मध्यप्रदेश व मालवे में नार्मदेयब्रा[illegible]
ह्मणोंका निवास है, उनकी उत्पत्तिका विवरण महर्षि पारस्कररचित
चातुर्वर्ण्योत्पत्ति प्रकाशमें है, उस ही भागका भाषाटीका खरगोनके
प० जानकीवल्लभशास्त्रीजीने किया है और हरदाके सदाशिव रघुनाथने
छँपाया है। पुस्तक छः आनेमें सोहनी और कम्पनी खण्डवा (मध्य
प्रदेश) से मिलती है, नार्मदेय ब्राह्मण इसको मंगाकर अवश्य पढ़े तो
उनको ज्ञात होगा, कि उनके पूर्वपुरुष कैसे सदाचरणसे रहनेवाले और
धार्मिक जगत्में प्रतिष्ठित थे, अन्तमें गोत्र प्रवर आदिका नकशा भी है।

आरोग्यसिन्धु—यह आयुर्वेद (वैद्यक) सम्बन्धी मासिक
पत्र विजयगढ़ जिला अलीगढ़ से वैद्यराज राधावल्लभजीके द्वारा स-
म्पादित होकर छः माससे प्रकाशित होता है, इसके लेख सर्वसाधारण
के परम उपकारी और रोचक होते हैं, अपने ढङ्गका पत्र बहुत अच्छा
है, वार्षिक मूल्य १॥=) है।

प्रभा—इस सचित्र मासिकपत्रिकाको हिन्दी भाषा की प्रभा मध्य
प्रदेशकी प्रभा और प्रयागीया सरस्वती की प्रभा कहना अनुचित न
होगा, खण्डवाके श्रीमान् कालूराम गङ्गराड़े वकीलने इस मासिक
पत्रिकाको सुसम्पादनपूर्वक प्रकाशित करके हिन्दीभाषाप्रधान
मध्यप्रदेशकी लज्जा रखली है, इसमें प्रायः हिन्दीके वर्त्तमान सभी
सुलेखकोंके हृदयोद्गार रहते हैं, चित्रशालाप्रेस पूनाकी सर्वाङ्ग सुन्दर
छपाई के विषयमें तो कहना ही क्या है। रायल अठपेजी चौंसठ पृष्ठ
की मासिकपत्रिका का वार्षिक मूल्य २ रुपया और एक सख्याका ५
आना है परदेशमें छपानेके कारण प्रभा अधिक देरीसे प्रकाशित होती
है, अभीतक भाद्रपदकी संख्या प्रकाशित हो पाई है।

गौड़हितकारी—यह मासिकपत्र प० नारायणप्रसादजी गौड़के
द्वारा सम्पादित होकर मैनपुरी से प्रतिमास ठीक समय पर प्रकाशित
होता है, वार्षिक मूल्य एक रुपया है, सम्पादक महाशय गौड़जाति
के और विशेष कर ब्राह्मण जातिके सच्चे प्रेमी और अनुभवी वृद्ध
हैं, आप अपना शक्तिभर गौड़ोंके लिये सदा उद्यत रहते हैं, यह गौड़
हितकारी भी आपके उस ही सच्चे प्रेमका फल है, हम अधिक न
लिखकर प्रत्येक गौड़भाइयोंसे एकबार इसका नमूना मँगाकर पढ़ने
का अनुरोध करते हैं, पत्र सम्पादक गौड़ हितकारी मैनपुरी
के नाम लिखना चाहिये, ।